... आ रोह तमसो ज्योति...

अन्धकार से ऊपर चढ़, प्रकाश में आ

A roha tamaso jyoti

May we rise above darkness and move towards light

दीपावली

आर्योदय

विशेषांक

आर्य सभा मॉरीशस

deepavali

Aryodaye No. 345 - Special Issue 2016

ARYA SABHA MAURITIUS

CONTENTS

विषय-सूची

पृष्ठ Page

Editor-in-chief – A Word of Thanks – *Dr Oudaye Narain Gangoo,O.S.K,Arya Ratna* 2

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि स्वः - *Shri Naraindra Ghoorah, P.M.S.M* 3

सम्पादकीय - अन्धकार और प्रकाश का द्वंद - *श्री बालचन्द तानाकूर, पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न* 4-5

From Darkness to Light – *Prof. Soodursun Jugessur, D.Sc, Dharma Bhushan, Arya Bhushan* 5-6

तमसो मा ज्योतिर्गमय - *डॉ० उदय नारायण गंगू, ओ.एस.के, आर्य रत्न, प्रधान आर्य सभा* 7-8

दीपावली और ऋषि-निर्वाण - *श्री सत्यदेव प्रीतम, सी.एस.के, आर्य रत्न, मंत्री आर्य सभा* 8-9

ऋषि दयानन्द के बलिदान व महाप्रयाण की कारुणिक कथा - *श्री हरिदेव रामधनी, आर्य रत्न, उपप्रधान आर्य सभा* 9-11

Celebration of Deepavali and Commemoration of Rishi Nirvaan Diwas – *Shri Ravindrasing Gowd* 12

Arya Samaj and Deepavali – *Smt. Rutnabhooshita Puchooa, M.A, P.G.C.E* 13

Deepavali the festival of lights - *Shri Dharamveer Gangoo, M.A, P.G.C.E* 14

A Time of Renewal – *Shri Mithyl Banymandhub, M.A, B.Ed* 14

Women – *Mrs Luxmee Jaypaul Diapermal* 14

Creating balance between Rich and Poor – *Shri Raj Sobrun, B.A (Hons) Counselling, M.Sc. Social Development* 15

शरीर में प्राणों का संचरण - *आचार्य सुद्युम्न, भारत* 16-18

अविस्मरणीय दिवाली - *डॉ० बीरसेन जागासिंह* 18

स्वामी दयानन्द और आर्ष ग्रन्थ - *पं० यश्वन्तलाल चूड़ामणि, एम.एस.के, आर्य भूषण, प्रधान आर्य पुरोहित मण्डल* 19-20

दीपावली ऋषि दयानन्द और नारी - *पंडिता अन्जनी महिपत, शास्त्री* 20-21

वेद ग्रन्थ का धरती पर आना - *पं० राजमन रामसाहा, आर्य भूषण* 21

दयानन्द और वेद - *पं० धर्मेन्द्र रिकाई, आर्य भूषण* 22

दीपावली की अग्नि प्रज्वलित करें - *पं० कविराज खेदू, शास्त्री* 23-25

Deepavali & Dayananda – The Sunnyasi, Reformer & Activist - *Shri Sookraj Bissessur, B.A, Hons.* 25-26

ऋषि की कल्पना और वर्तमान आर्य व आर्य समाज - *डॉ० श्रीमती चेतना शर्मा ब्रद्री* 27

अमावस्या का जलता दीपक - *श्री सोनालाल नेमधारी, आर्य भूषण* 28

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयीः - *डॉ० श्रीमती ऋचा शर्मा मोकूनलाल, एम.ए, पी.एच.डी* 29

The Essence of Light in Human Life – *Pt. Pradeep Ramdonee* 30

A New with Vedic light in a war-torn weary world – *Shri Vinay Ramkissoon, Yoga Instructor* 31

The Science of Government (Raj Dharma) Part 1 - *Shri Pahlad Ramsurrun* 32-33

Deepavali : Time to answer to the call of the inner light – *Yogi Bramdeo Makoonlall, Darshanacharya* 33-34

A WORD OF THANKS

'आर्योदय' के इस विशेषांक को अपनी शिक्षाप्रद रचनाओं से सजाने वाले सभी लेखक-लेखिकाओं के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं। पूर्णाशा है कि भविष्य में भी आपका सहयोग सदैव की भाँति हमें प्राप्त होता रहेगा ।

सभी को दीपावली अभिनन्दन ।

At the request of the Arya Sabha, our respected writers have been kind enough to spare some of their precious time to write articles meant for this special issue of the Aryodaye.

We would like to express our grateful thanks to them all.

We sincerely hope that in the future, too, we will get similar contribution.

Kindly accept our sincere gratitude.

We wish you all a very happy Deepavali. May God lead us to light and shower His blessings on our country and on us.

O.N. Gangoo (Dr)
Editor-in-chief

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽ उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम ।।

यजुर्वेद ३५/१४

Om ! Udvayam tamasaspari swah pashyanta utaram.
Devam devatrā suryamaganma jyotir utamam.

Yajur Véda 35/14

Naraindra Ghoorah, P.M.S.M

Glossaire / Shabdārtha :

ut vayam : élevons-nous

amasah pari : au-dessus de l'obscurité (de l'ignorance ou du péché)

suryam : (i) Le soleil
(ii) Dieu, l'âme de l'univers, le détenteur de toute la connaissance et la source de toute lumière qui illumine le soleil, les autres corps célestes aussi bien que l'univers entier

jyoti : une lumière vive / resplendissante

swah : Le Seigneur qui nous transmet le bonheur dans notre vie.

pashyantah : en regardant, en contemplant

devam : (i) Dieu (ii) Celui qui possède toutes les qualités divines.

devatra : L'Être Suprême (Mahadeva), le Maître de tout l'univers (les Devas – tels que le soleil, les astres la terre, la lune, les éléments de la nature etc). C'est Lui que le gère et le protège

utamam : qui est très subtil, supérieur, au-dessus de tout.

utaram : Dieu est le maître suprême de l'univers, éternel, tout-puissant, omniscient, omniprésent, et resplendissant. Il est au-delà des ténèbres de l'ignorance et du péché. Il est exempt du sommeil et il est toujours actif.

aganma : Il éclaire notre esprit de par sa lumière spirituelle que l'on doit atteindre à tout prix par l'adoption de la vérité et par l'efficacité de notre savoir de notre spiritualité et de notre dévouement envers Lui.

Interprétation / Anushilan

Ce verset du Yajur Veda se trouve dans d'autres textes Védiques. C'est aussi le premier verset de l'upasthan Mantrah du Vedic Sandhyā – notre prière quotidienne.

Le thème principal de ce verset traite de notre devoir envers Dieu, Le Créateur de l'univers et notre protecteur, par excellence, qui pourvoit à tous nos besoins pour que nous puissions vivre heureux.

De ce fait on est redevable envers Lui pour tous ces bienfaits à notre égard et nous devons lui rendre grâce, voire exprimer notre profonde reconnaissance envers Lui par la prière / la vénération.

Dieu est la lumière divine. Il est au-delà de toute obscurité (c'est-à-dire, au-delà de l'ignorance, des péchés, des malheurs, des vices, et des maladies, entre autres). Il existe même après la dissolution de l'univers.

Il est très subtil, supérieur et au-dessus de tout. Il est L'Être Suprême (Mahādeva), le Maître de tout l'univers c'est-à-dire, de tous les Devas qui sont : le soleil, la lune, la terre, les étoiles, les planètes, les autres corps célestes, L'éther le ciel, l'espace, les éléments de la nature, etc.

En Hindi on peut dire : « Devon ké deva Mahādeva ! » Il est aussi notre lumière spirituelle qui dissipe les ténèbres de l'ignorance et du péché. Il nous transmet le bonheur Suprême (Moksha) -- La libération de notre âme du cycle éternel de la vie et de la mort.

Il éclaire et enrichit notre esprit lorsque l'on est en parfaite communion avec Lui. Il nous inspire à adopter la Vérité dans notre vie. Il rend plus efficace notre savoir, spiritualité, dévouement (suivre ses instructions/obéir au lois de la nature) envers Lui, c'est-à-dire par la pratique du Yoga.

सम्पादकीय

अन्धकार और प्रकाश का द्वंद

बालचन्द तनाकूर, पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न

विश्व में अन्धकार और प्रकाश का क्रम आदिकाल से चलता आ रहा है और भविष्य में चलता रहेगा। रात के बाद दिन होता रहा और दिन के बाद रात नियमित रूप से होती रही। इसी प्रकार दोनों का सम्बन्ध ऐसा ही बना रहेगा।

हमारे जीवन में अँधेरा और उजाला हर एक परिस्थिति के अनुकूल अपना रंग दिखाता रहा और जीवन पर्यन्त दिखाता रहेगा। दुख, संकट, आपत्ति, भय, शोक, अज्ञान, शोषण, परतन्त्रता आदि अन्धकार का प्रतीक है। सुख, आनन्द, हर्ष, अभय, सत्य स्वतन्त्रता आदि प्रकाश के लक्षण हैं । इन दो परिस्थितियों से हमें गुज़रना पड़ता है, क्योंकि ये हमारे जीवन के दो पहलू हैं ।

संसार में जब अन्याय, अत्याचार, शोषण और परतन्त्रता रूपी अन्धकार बढ़ जाते हैं, तब सत्य, न्याय, पोषण तथा सुरक्षा करने वाले महामानव आकर मनुष्य को आलोकित करते हैं। उन बेबस जनों को नवजीवन प्रदान करते हैं। इसी प्रकार ज़िन्दगी भर अन्धकार और प्रकाश का संघर्ष चलता रहता है । इन दोनों का अटूट लगाव है ।

१९ वीं सदी में जब भारतीयों पर अन्याय, अत्याचार, शोषण, अन्धविश्वास रूपी अन्धकार के बादल छाए हुए थे, तब उनको सही मार्ग-दिशा दिखाने वाले वरद-पुत्र दयानन्द पैदा हुए थे। दिव्य दयानन्द ने अपने त्रिनेत्र से भारतीयों की दयनीय दशा देखी और आर्यसमाज स्थापित करके सत्य विद्या की ज्योति फैलाई । वेद-ज्योति से भारतीयों के जीवन में प्रकाश आया । ज्यों-ज्यों मानव जीवन से अज्ञान का अन्धकार दूर होता गया, त्यों-त्यों मानव समाज का जागरण होता रहा, इसी प्रकार कितने प्रकाशकों का उद्‌भव हुआ जो सारे अन्धकार दूर करते रहे । और भविष्य में सभी प्रकार के तमोभाव दूर करते रहेंगे ।

वेदों के उद्धारक एवं सत्य के प्रकाश देवर्षि दयानन्द ने मानव कल्याण निमित्त बड़ा ही अद्‌भुत कर्म निभाया है। उनकी दूरदर्शिता, विचार-धारा, तपस्या, विद्वत्ता, न्यायप्रियता, धार्मिकता, सहनशीलता, सेवावृत्ति आदि अद्‌भुत गुण हमारे लिए प्रेरणादायक हैं। वेदों के उद्धारक महर्षि दयानन्द जी ने जीवन पर्यन्त एक आदर्श मानव का प्रमाण दिया था। जिन्होंने उनकी विचार-धारा को अपने जीवन में उतारा उनका सम्पूर्ण-जीवन आलोकित होता रहा और जिन्होंने नहीं अपनाया वे तिमिरावस्था में पड़े रहे ।

महर्षि जी अपनी दिव्य-ज्योति से मनुष्य के मन, बुद्धि, सोच-विचार और अनुभव को परखने वाले महापुरुष थे। वे इन्सान की अच्छाई और बुराई तथा दृष्टिकोण को भली-भाँति परख लेते थे और अपने व्यक्तित्व, विद्वत्ता, कर्त्तव्यपरायण तथा अद्‌भुत गुणों से उन्हें नित्य प्रभावित करके उजागर करते रहते थे। उनके संघर्ष से अंधकार पर प्रकाश विजयी होता रहा। इसी प्रकार समय और परिस्थिति के आधार पर अंधकार और प्रकाश का सिलसिला आज तक चलता रहा और चलता रहेगा ।

आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान के बल पर दुनिया में बड़ी तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है । मानव को ज्ञान प्राप्त करने के लिए विविध प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। जो कार्य निभाने में कई दिन लग जाते थे आज हम घण्टों में उसे बखूबी कर पाते हैं। विज्ञान के सहारे मनुष्य बड़ी आसानी से असम्भव को सम्भव बना रहा है और नवीन आविष्कारों से दुनिया को चमका रहा है। फिर भी अन्धकार और प्रकाश का द्वंद जारी है। आज भी कितने नासमझ व्यक्ति भ्रमजाल में पड़कर पतन की ओर बढ़ते जा रहे हैं। कुसंगी बनकर विनाश को आमन्त्रित कर रहे हैं। चरित्रहीन का प्रमाण देकर पापी बन रहे हैं। उन्हें सत्य-ज्ञान का अखण्डित प्रकाश दिखाना है, अन्यथा धीरे-धीरे वे पतन की ओर अग्रसर होते जाएँगे और उनका जीवन अन्धेरे में ही ओझल हो जाएगा और मानव-समाज पतनावस्था में होगा ।

हमारे बाहरी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, दीपक आदि साधन तो प्राप्त हैं, परन्तु ये सारे ज्योतिर्मय साधन हमारे आन्तरिक अंधकार को मिटाने में उपयुक्त नहीं हैं। हमारे मन, बुद्धि, सोच-विचार तथा मनो-भावनाओं को पवित्र करने के लिए ईश्वर-भक्ति एवं वेद की सत्य विद्याओं की आवश्यकता होती है, इनके प्रकाश से हमारी आत्मा चमक पाती है। अतः हमारे आंतरिक अन्धकार को नष्ट करने में सत्य प्रकाश की आवश्यकता होती है।

दीपावली और ऋषि निर्वाण दिवस समस्त हिन्दुओं के लिए एक महान् और प्रेरणादायक पर्व है। दीपावली के दिव्य प्रकाश से बाहरी दुनिया का अन्धकार मिट जाता है और हम दुनिया के चमक-दमक में हर्षित हो उठते हैं। ऋषि-निर्वाण दिवस के आयोजन से हमारे बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक बल प्रभावित होकर उत्तेजित हो जाते हैं। हम अगर अज्ञानता की कालिमा को हटाकर सत्य-ज्ञान की ज्योति फैलाते रहेंगे तो हमारे जीवन में रोज़ दिवाली होगी, प्रकाश ही प्रकाश होगा ।

सत्यज्ञान से मानव को आलोकित करना तथा तिमिरावस्था से दूर हटाना आर्यसमाज का प्रमुख उद्देश्य है । अपनी उद्देश्यपूर्ति में गत १९० वर्षों से आर्यसमाज इस देश में एक बड़ा ही सराहनीय कार्य निभाता आ रहा है फिर भी आज इस वैज्ञानिक युग में बहुत से अबोध प्राणी अन्धविश्वास, भ्रम और अज्ञानतावश, कुसंग में पड़कर विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं । अपने कुकर्मों से दुराचारी बनकर अपने और अन्यों को हानि पहुँचा रहे हैं। दयानन्द जी के तपोमय जीवन से प्रेरित होकर उन दुराचारियों को सही मार्ग-दिशा दिखाना हर एक आर्य बन्धु का कर्त्तव्य है ।

दीपावली एवं ऋषि निर्वाण दिवस के पावन अवसर पर हमारी यही कामना है कि समस्त हिन्दू परिवार में अटूट प्रेम, सहयोग तथा आत्मीयता का प्रकाश स्थापित हो और मतभेद, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार एवं शत्रुता रूपी अन्धकार कभी प्रकट न हो। अन्धकार और प्रकाश की लड़ाई में हमेशा प्रकाश विजयी बनकर सही मार्ग दिखाता रहे। हमारे जीवन काल में हर एक अमावस्या सदा पूर्णिमा में परिवर्तित होती रहे, ताकि सभी का जीवन आलोकित होकर सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हो सके ।

परमात्मा की कृपा से सभी देशवासियों के लिए दीपावली आनन्दमय और मंगलमय हो । हम आपसी प्रेम ज्योत से यह देश ज्योर्तिमय बनाते रहेंगे और एक साथ मिलकर हर तरह के तम को मिटाते रहेंगे ।

From darkness to light

Prof. Soodursun Jugessur,D.Sc, Dharma Bhushan, Arya Bhushan

'Tamaso ma jyotir gamaya', or *'Lead us from darkness to light'* is our special prayer during Divali. This darkness is not only the physical darkness due to the absence of light, but also the darkness in our minds due to ignorance. Many of us are not aware of the basic facts about our development because our schools have not taught us these facts. Nor have many of our families who are caught in the snare of earning for a higher standard of living. Our education has been programmed to make us economic operators producing goods and services to serve our material needs and enrich the people who manipulate this economy. The result is that we continue staying in the darkness that surrounds.

What does our Vedic literature teach us? Besides healthy living in tune with Nature, it also teaches us to develop our physical, mental, psychological, aesthetic and spiritual selves so that we can be capable of achieving our full potential in a shorter period of time. The teachings are in our books, but our teachers ignore them and do not impart them to our young minds. If they attempt to do so, it is mostly superficial, and do not become part of our being. Let us look at the two early chapters on 'Upbringing of children' and on 'Education' in Swami Dayanand's *'Satyarth Prakash'* or *'The light of truth'*. With quotations from the Vedas and related literature, Swamiji has exhorted us to understand the facets of human development starting right from the time of the embryo in the womb to the end in the tomb. Modern scientific research has only recently confirmed what our Rishis foresaw and taught millenniums back! They have used MRI or magnetic resonance imaging and sonography, besides other tools.

Since education starts in the womb, mothers are advised to be very cautious in their behavior, avoid all family disputes, live in pleasant surroundings, eat nutritious food, avoiding toxic agents like alcohol, cigarette, meat and spicy foods. No wonder in the good old days they were advised to keep away from the husband's family and stay with their mother where she could take proper care of her! In today's world, great sacrifice is required from the partners to allow for the proper development of the child. We can't have our cake and eat it!

After the baby's birth, it is the mother who is most responsible for the child's education until he/she reaches the age of three. The father's role is secondary, besides providing the essential material needs. As from the age of three to the age of eight, the father now has the more important role in the education. The tragedy is that today, right as from the age of two or even earlier, we leave the care of the child in nursery schools or in pre-primary schools! All this in order to run after more money, often believing that we will be saving for the future education of the child! Even if that is so, we invariably end up with bright children who are misfits in society. The parents are the ones who teach proper behavior to the child, like courtesy, grace, speech, self-restraint, love of learning, proper friendship, truthfulness, courage, perse-

verance, and cheerfulness. In a different environment the children learn from the other kids who invariably come from different backgrounds and share their attitudes with the others. One lone baby-sitter or nursery school teacher can hardly do so. Do we realize the havoc we are creating in the mental, psychic, emotional and physical development of the child? In the name of smarter education, we are encouraging the child to play with the tablet, thereby restricting his physical movements, and spoiling his eyes. Most of the games they play encourage them to be violent. When children grow up and start surfing the internet, they often end up with pornographic material that encourages them to play with their sex organs and lose their virile fluid.

Much stress has been laid in our Vedic literature on the development of the spirit of *'brahmacharya'*. To modern minds this is a joke! While the former encourages self-restraint, the latter does the opposite, on the premise that the natural instincts of a child should not be smothered and killed. No wonder we see so much frustration, violence, disputes, terrorists, wars, lust, greed and corruption everywhere! Had the concept of proper *'sanskars'* or proper memory imprints been understood and promoted, such evils would not have proliferated. It is time to get back to basics where the primary and all-important role of proper parenting is essential. The need for family dialogues in the spirit of the *'Sukhi Parivaar'* program, (www.sukhiparivaar.org) is felt more than ever!

The Gurukul system of education where a child is kept in the company of an '*acharya*' is so relevant these days. But do parents understand its importance? Everybody is running after a system that prepares the children for well-paid jobs, but hardly for proper living in a healthy environment. Acceptedly, the Gurukul system has to be adapted to the modern context, bearing in mind its essential principles.

It is appropriate to highlight the historical orientation given by Lord Macauley who visited India during the early days of the British Empire, and who noted that India was a peaceful place, was more or less self-sufficient in food production, rural development based on SME's and SMI's, and its educational system promoted the Gurukul system. His objective was to increase trade, make India a producer of raw materials that could be exported to England, and colonize the spirit of this nation. And for this he had to strike at the Gurukul system! He advised authorities to change the education system so as to develop 'babus' who could serve the government in offices and follow the dictates of the colonizers while earning better salaries and exploiting cheap labor. He succeeded, and unto this day India is caught in this web, playing secondary roles in the hands of those who control global economy!

Going back to the prescriptions of our Vedic literature, it is necessary to teach children disciplines that make of them fully developed individuals, aware of their social role in maintaining harmony, cooperation, sharing, and appropriate growth. Parents need to play their primary roles, while schools have to teach disciplines that, beside academic courses, promote universal values that sustain healthy life. Thank God, yoga is now globally recognized as a panacea for our ills! Besides the usual physical asanas, stress has to be laid on the basics of yoga that teach the concept of *'Yams and Niyams'*, Unless these are mastered by the pupils and practiced in their daily life, little positive change can be expected. On the contrary we will accelerate our development towards global destruction, spurred by global warming and climate change, the curse that hangs on humanity's neck since the start of economy-centered development!

S.J 30.9.16, sjugessur@gmail.com

दीपावली अभिनन्दन

प्रकाश-पर्व की इस आनन्दायिनी वेला पर आर्य सभा अपने समस्त सदस्य-सदस्याओं शुभ चिंतकों, समाज-सेवकों और इस देश में बसे सभी जनों को दीपावली की मंगल कामनाएँ प्रस्तुत करती है।

दयानिधे परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से सब के जीवनों में प्रकाश भर जाए, सभी अखण्ड स्वास्थ्य एवं सुख-समृद्धि के स्वामी बन जाएँ ।

दीपावली अभिनन्दन

उदयनारायण गंगू (डॉक्टर)
सभा-प्रधान

तमसो मा ज्योतिर्गमय

डॉ० उदय नारायण गंगू, ओ.एस.के, आर्य रत्न, प्रधान आर्य सभा

भगवान् वेद ने मानव को आदेश दिया – **अग्निमीळे** - अग्नि की स्तुति करो । भारत के प्राचीन ऋषियों ने विश्व को उपदेश दिया – **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** - तम से हटो, ज्योति की ओर बढ़ो। इस आदेश-उपदेश को मनुष्य ने हृदय से स्वीकार किया। इसीलिए उसने अन्धकार का अन्त करने के लिए सर्वप्रथम अग्नि की खोज की और दीपक का आविष्कार किया। समय के साथ तम को तिरोहित करने के लिए प्रकाश के नये-नये साधन धरा-धाम को प्रकाशित करते गये। प्रतिवर्ष दीपावली का स्वागत होता गया।

दीपोत्सव मनाने वालों को आवश्यक है कि वे 'तम' और 'ज्योति' की विस्तृत परिभाषा पर विचार करें । यह सर्वविदित है कि सूर्य के अस्त होने पर अन्धेरे का उदय होता है । इस भौतिक अंधियारी के कारण हमारे नेत्र बाहरी दृश्य को देखने में असमर्थ हो जाते हैं। जब यह तम पाँव पसारने लगता है तब हम दीपों की आवलियाँ सजाकर इसे नष्ट कर देते हैं। परन्तु एक ऐसा भीषण तिमिर है, जिसे असंख्य दीपकों की ज्योति भी तिरोहित नहीं कर सकती। वह तम हमारे मन और बुद्धि पर आक्रमण करता है। जो भी उस अन्धकार का शिकार बनता है, वह सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म को देखने में असमर्थ हो जाता है। महापंडित रावण उस तम के जाल में फँस गया था, जिसके कारण वह विवेकहीन हो गया था। दीपावली महापर्व का चिरंतन सन्देश है कि बाहरी अन्धकार के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति अपने आन्तरिक तम का अन्त करे ।

मनस्वियों ने बताया है कि दीपावली वैदिक कालीन पर्व है। इसका प्राचीन नाम 'शारदीय नवस्येष्टि' है । यह कृषकों का त्योहार है। लोक विश्वास है कि दीपावली का विशेष सम्बन्ध रावण-वध के पश्चात् श्री राम के अयोध्या-आगमन एवं लक्ष्मी-पूजन से है । आम आदमियों का यह विश्वास विचारणीय है। रावण ने तम-रूपी अधर्म की शरण ली, जबकि मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र धर्म-रूपी ज्योत को जीवन भर फैलाते रहे । ज्योति के पुजारी राम का नाम दीपावली से जुड़ गया और हिन्दू समुदाय ने मान लिया कि यह पर्व अन्धकार पर प्रकाश की विजय का सन्देश लिए आता है ।

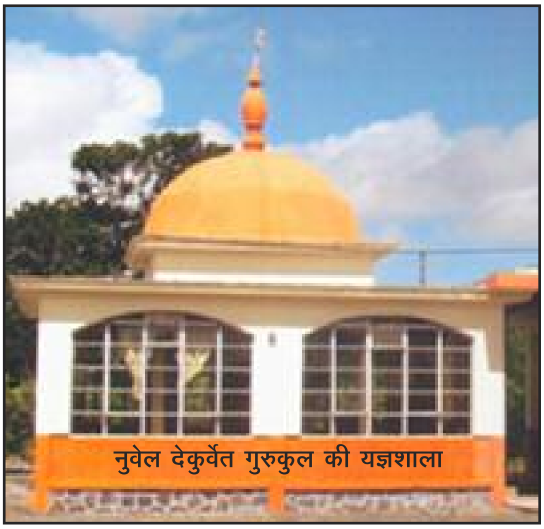
नुवेल देकुर्वेत गुरुकुल की यज्ञशाला

बहुत से लोग इस अवसर पर लक्ष्मी-पूजन करके दीपोत्सव मनाते हैं। उन्हें 'लक्ष्मी' के सही अर्थ का ज्ञान नहीं होता। ज्ञानी व्यक्ति लक्ष्मी-पूजन का अर्थ भली-भाँति जानता है। उसको यह ज्ञान है कि भौतिक सम्पत्ति ही 'लक्ष्मी' है। इसलिए वह अनावश्यक व्यय करके अपना रुपया-पैसा पानी की तरह बहाता नहीं, लक्ष्मी का सम्मान करता है। कृषक लक्ष्मी का सच्चा पूजक होता है और जुआरी लक्ष्मी का अनादर करने वाला होता है ।

दिवाली की रात को भारत में जुआ खेलने का लोक रिवाज़ है। मॉरीशस में तो साल भर जुआरी जुएखाने और घुड़दौड़ में धन लुटाते रहते हैं। जुएबाज़ी के प्रगाढ़ अन्धकार में अपनी मानवता को खो बैठते हैं। वे हेरा-फेरी द्वारा सम्पत्ति के स्वामी बनने का दिवा-स्वप्न देखते हैं। छल-कपट का जाल बिछाकर जुआ खेलते हैं। लक्ष्मी को दाँव पर लगाते हैं। उनके इस व्यवहार से लक्ष्मी कुपित होकर उन्हें अभिशाप दे जाती है। उनका दिवाला निकल जाता है। परिणाम स्वरूप उनके जीवन में दरिद्रता की अंधियारी छा जाती है ।

ऋग्वेद ने उपदेश दिया –

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः ।

ऋ० मं०१० सू० ३४

हे जुआरी, जुआ खेलना छोड़, खेती कर। मेरी बात पर विश्वास करता हुआ खेती से उत्पन्न धन में खेल ।

द्यूत-क्रीड़ा में मस्त व्यक्ति वेद के इस उपदेश की अवहेलना करता है । भारतवर्ष का इतिहास साक्षी है कि पाण्डवों और कौरवों ने वेद की इस मर्यादा का उल्लंघन करके अपने कुल और मातृभूमि का सर्वनाश कर दिया ।

दूसरी ओर किसान वर्ग है। हर किसान ने वेद के इस उपदेश को सिरोधार्य किया । वह अपने खेत को हवन-

कुण्ड बनाकर उसमें अपने स्वेद-बिन्दुओं की आहुतियाँ देता रहा। उसकी आहुतियों से आह्लादित होकर लक्ष्मी उसे वरदान देती रही। उसका घर धन-धान्य से भरता गया। उसने उस धन का उपयोग अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में किया । बच्चों को सच्चा ज्ञान देकर उनकी बुद्धि को प्रकाशित कर दिया । यदि इसका ज्वलन्त उदाहरण देखना हो तो हमारे पूर्वजों के जीवन का अवलोकन करना पड़ेगा। वे खेतों में कठिन परिश्रम करते थे। मज़दूरी करते-करते कृषक बने। लक्ष्मी-पूजन के माध्यम से अपनी दरिद्रता से मुक्त हुए। उनकी सन्तानें शिक्षित होकर डॉक्टर, बारिस्टर, इंजीनियर, प्रोफ़ेसर और क्या-क्या नहीं बनीं । वे तपःपूत थे, जिन्होंने दीपावली के दीपों की भाँति अपनी तेल-बाती को जलाकर अपनी सन्तानों के जीवन को ज्योतित कर दिया । ऐसे ही व्यक्ति दीपावली पर्व की प्रसन्नता के सच्चे अधिकारी होते हैं।

दीपावली का दूसरा सन्देश है – पवित्रता का प्रसार करना । इस पर्व का स्वागत करने के लिए हिन्दू समुदाय अपने घर-आँगन की सफ़ाई पर पूरा ध्यान देता है। उसकी मान्यता है कि जिस घर में स्वच्छता होती है, उसी में धन की देवी, लक्ष्मी अपना डेरा डालती है। परन्तु बहुत से लोग यह नहीं समझना चाहते कि अन्तःकरण को निर्मल किये बिना, सुख-सम्पदा का वरदान देने वाली लक्ष्मी क्षणिक दर्शन देकर सदा के लिए अदृश्य हो जाती है । झूठ, स्वार्थ, छल, कपट, ईर्ष्या-द्वेष आदि गन्दगियों से मन बड़ा ही मलिन हो जाता है। जहाँ ऐसी गन्दगी होती है, वहाँ लक्ष्मी का निवास कहाँ । वह तो कमल पर स्थित होती है । सभी जानते हैं कि कमल पवित्रता का प्रतीक है । वे लोग भाग्यवान् है, जो कमल के समान बन जाते हैं ।

दीपावली का प्रमुख सन्देश है – **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** - अर्थात् तम की ओर नहीं, प्रकाश की ओर बढ़ना है। अज्ञान से बढ़कर कोई तम नहीं और ज्ञान-सम कोई ज्योति नहीं। दीपावली पर्व का सच्चा स्वागत वह जन करता है, जो प्रकाशमय पथ अर्थात् ज्ञान-मार्ग का पथिक बनता है ।

दीपावली और ऋषि-निर्वाण

सत्यदेव प्रीतम, सी.एस.के, आर्य रत्न, महामन्त्री, आर्य सभा मोरिशस

पृथ्वी दो भागों में विभाजित है। एक दक्षिणी गोलार्द्ध और दूसरा उत्तरी गोलाद्ध। इसलिए एक गोलार्द्ध में जब ग्रीष्म ऋतु होती है तो दूसरे गोलार्द्ध में ठण्ड का मौसम होता है । जब हमारे पूर्वज भारत छोड़कर यहाँ मोरिशस में आकर बसे तो अपने साथ अपनी सारी चीज़ें लाए। अपनी संस्कृति लाए, अपनी परम्परा लाये, अपने धर्म लाये और अपने रीति-रिवाज भी लाए ।

जब भारत में दिवाली मनाई जाती है तो वर्षा ऋतु के बाद कड़ाके की सर्दी आने का संकेत मिलने लगता है। वर्षा ऋतु आने से पहले जो विविध प्रकार के बीज बोये गये थे; फ़सल तैयार हो गई होती है, फ़सल काटी जाती है और कृषक जन के घरों में धनसंपत्ति आने लगती है। इसीलिए दीपावली के मौक़े पर लक्ष्मी पूजा होती है ।

विद्या की देवी सरस्वती मानी जाती है। देवी कोई महिला नहीं होती है जिसका इतिहास है, जिसकी जीवनी है बस वह एक प्रतीक है। उसी प्रकार लक्ष्मी भी धन का प्रतीक है और भी देवी है जैसे दुर्गा, काली शक्ति की देवी आदि वैसे तो एक देश को माता माना जाता है जैसे : भारत माता एक पृथ्वी का ग़ोल रूप बनाकर उस पर भारत माता को स्थापित कर देते हैं। अँग्रेज़ी में भी धरती माता को Motherland कहते हैं। हमारे राष्ट्रगान तो Motherland ही का प्रयोग हुआ है। फ़्रांस में भी मेर पात्री (Mere Patrie) मानते हैं अपने देश को ।

दीपावली और होली का सीधा सम्बन्ध खेती-बारी से होता है। कई सहस्त्र वर्षों से भारत कृषि प्रधान देश माना गया है और आज भी विज्ञान और टेक्नोलोजी के युग में भी भारत वर्ष खेती-बारी पर ही बहुत हद तक निर्भर करता है। बोलते हैं भारत वर्ष गाँवों में बसा है । गाँवों का मुख्य कारोबार खेतों में होता है ।

मोरिशस पहले खेती-बारी पर निर्भर करता था। पर पिछले कुछ वर्षों से खेती-बारी का नम्बर पाँचवे या छठे नम्बर पर आ गया है । पहला पर्यटण उद्योग है ।

चूँकि हमारे सभी पर्व, स्वतन्त्रता दिवस और बड़े दिन (Christmas) को छोड़कर, वो चाहे कृश्च्यन हो, चीनी हो या मुस्लिम समुदाय के लोग हो, वे अपने-अपने पूर्वजों के देश उदाहरण के लिए चीनी समुदाय का स्प्रिंग फेस्टिवल (Spring Festival) यहाँ तो मोरिशस में स्प्रिंग है ही नहीं फिर भी मनाते हैं। यहाँ तक कि हिन्दू समुदाय के

सनातन धर्मियों ने शिवरात्रि मनाने केलिए एक तालाब ढूँढ़ ही लिया और परीतालाब या 'बड़ा तालाब' का नाम भी बदल कर हिन्दू नाम रख दिया, 'गंगा तालाब' क्योंकि भारत की गंगा से जल लाकर बड़े तालाब के जल में मिला दिया । वैसे तो गंगाजल आकर बंगाल की खाड़ी में हिन्द महासागर में ही मिलता है ।

इन्हीं सब बातों से तो सात समुन्दर पार चार बड़े धर्मों के मानने वाले लोग कन्धे से कन्धा मिलाकर लगभग चार सौ वर्षों से एक दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रह रहे हैं । अपने अपने पर्व/उत्सव बड़े भव्य-भाव से मनाते हैं।

पर्व या उत्सव एक जाति के लिए बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है । खासकर जब इन पर्वों में धर्म का समावेश कर देते हैं। हम हिन्दू जब कोई भी संस्कार करते हैं तो हवन-यज्ञ के बिना नहीं करते । इसी प्रकार जब कोई उत्सव मनाते हैं तो खुशियाली मनाने से पूर्व परिवार के सदस्यों के साथ या समाज में सामूहिक रूप से यज्ञ करते हैं। मिठाइयाँ वितरण करते हैं और गले मिलते हैं। इसे देखकर भारत के लोग भी कभी-कभी कहने लगते हैं कि इस प्रकार से हम भी दिवाली नहीं मनाते ।

कुछ हिन्दू दीपावली मनाते हुए ऐसी मान्यता रखते हैं कि अयोध्या के राजकुमार श्री रामचन्द्र जी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण सहित वनवास के चौदह वर्ष समाप्त हो जाने के बाद अयोध्या लौटे थे तो अयोध्या वासियों ने दिवाली मनाई थी। सच्ची बात तो यह है कि अयोध्या वासियों ने अपने प्यारे राम से चौदह लम्बे वर्षों तक मिले नहीं थे और जब वे लौटे तो उनका स्वागत करने के लिए बहुत दीये जलाकर खुशियाँ मनायी थीं। ऐसे लगता था कि दिवाली हो गई ।

हमारे ग्रन्थों में तो लिखा है कि श्री रामचन्द्र जी लंका पर विजय पाने के बाद जो फाल्गुन वा वैशाख में हुआ था तो वे तुरन्त अयोध्या लौटे थे तो कार्तिक मास में किस प्रकार सम्भव है ? इस तथ्य पर गम्भीरता-पूर्वक विचार विनिमय करने के बाद इस ऐतिहासिक भूल को सुधारना है क्योंकि रामचन्द्र जी ने वनगमन से पहले दीपावली तो ज़रूर मनायी होगी ।

हाँ यह बात सच है कि आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का निर्वाण उसी शाम को हुआ था जब भारतीय समाज में दिवाली मनाने की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं ।

बहुत लोगों का कहना है कि आर्यसमाजी कैसे लोग हैं कि दिवाली के मौक़े पर हर्षित होते हैं जब कि दयानन्द को अपना गुरु मानते हैं और उनका सम्मान करते हैं । हम हर साल यही दोहराते हैं कि दयानन्द का निर्वाण हुआ था, मामूली मौत नहीं। उन्हें तो निर्वाण प्राप्त हुआ था। इस लिए हम दिवाली के साथ मिलाकर खुशियाँ मनाते हैं। क्या किसी को निर्वाण प्राप्त हो जाए तो दुखी होना चाहिए ?

ऋषि दयानन्द के बलिदान व महाप्रयाण की कारुणिक कथा

ऋषि दयानन्द जी का जीवन गुणों व कार्यों की दृष्टि से जितना सर्वांगपूर्ण और शिक्षाप्रद है उतनी ही उनकी मृत्यु भी आदर्श है। कार्तिक अमावस्या के दिन अजमेर नगर में उनका बलिदान वा महाप्रयाण हुआ। स्वामी जी को जोधपुर प्रवास में विष दिया गया था। इससे पूर्व भी अनेकों बार उन्हें विष दिया गया। पूर्व के सभी अवसरों पर वह यौगिक एवं अन्य क्रियाओं द्वारा विष का प्रभाव समाप्त करने में सफल रहते थे। ऋषि दयानन्द जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह व उनके अनुज महाराज प्रताप सिंह के निमंत्रण पर गये थे और वहाँ राज्य के अतिथि थे। विष दिये जाने के बाद वहाँ उनका समुचित उपचार व चिकित्सा नहीं हुई। उनकी शारीरिक स्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो जाने पर उन्हें वहाँ से आबूरोड और उसके बाज अजमेर लाया गया जहाँ दीपावली के दिन अर्थात् ३० अक्तूबर सन् १८८३ को सायं ६.०० बजे निर्वाण हुआ। उनकी मृत्यु के दिन का वृतान्त हम उनके एक जीवनीकार एवं शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी के शब्दों में वर्णन कर रहे हैं ।

स्वामी सत्यानन्द जी लिखते हैं – कार्तिक कृष्ण १४ को महाराज के शरीर पर नाभि तक छाले पड़ गये थे, उनका जी घबराता था, गला बैठ गया था। श्वास-प्रश्वास के वेग से उनकी नस-नस हिल जाती थी। सारी देह में दाह-सी लगी हुई थी। परन्तु वे नेत्र मूंदकर ब्रह्म ध्यान में वृत्ति चढ़ाये हुए थे। अनजान लोग उनकी इस ध्यानावस्था को मूर्छा मान लेते थे। जब शरीर अपने व्यापार से शिथिल हो जाय और बोलने आदि की शक्ति भी मन्द पड़ जाय तो सभी सन्तजन मनोवृत्तियों को मूर्छित करके निमग्नावस्था में चले जाया करते हैं ।

कार्तिक अमावस्या मंगलवार (३० अक्तूबर, सन् १८८३), दीपमाला के दिन, सवेरे, विदेशी बड़ा डाक्टर न्यूटन महाशय आया। उसने उनके रोग-भोग की अवस्था देखकर आश्चर्य से कहा कि ये बड़े साहसिक और सहनशील हैं।

उनकी नस-नस और रोम-रोम में रोग का विषैला कीड़ा घुसकर कुलबुलाहट कर रहा है, परन्तु ये प्रशान्तचित हैं। इनके तन पिंजर को महाव्याधि की ज्वाला-जलन जलाये चली जाती है जिसे दूर से देखते ही कंमकंपी छूटने लगती है। पर ये हैं कि चुपचाप चारपाई पर पड़े हैं। हिलते-डुलते तक नहीं । रोग में जीते रहना इन्हीं का काम है ।

भक्त लक्ष्मणदास ने डॉक्टर न्यूटन से कहा कि महाशय ये महापुरुष स्वामी दयानन्द जी हैं। यह सुनकर डॉक्टर महाशय को अत्यधिक शोक हुआ। महाराज ने उस बड़े वैद्य के प्रश्नों का उत्तर संकेत-मात्र से दिया । एक मुसलमान वैद्य, पीरजी, बड़े प्रसिद्ध थे। वे भी उनको देखने आये। उन्होंने आते ही कह दिया - 'उनको किसी ने कुलकण्टक विष देकर अपनी आत्मा को कालिख लगाई है। इनकी देह पर सारे चिह्न विष-प्रयोग-जन्य दिखाई देते हैं। पीर जी ने भी महाराज का सहन-सामर्थ्य देख दाँतों तले उंगली दबाते हुए कहा, धैर्य का ऐसा धनी, धरणी-तल पर हमने दूसरा नहीं देखा।

इस प्रकार राजवैद्यों और भक्तजनों के आते-जाते दिन के ग्यारह बजने लगे । रोगी का सांस अधिक फूलने लगा। वे हाँफते तो बहुत थे, परन्तु बोलने की शक्ति कुछ लौट आई थी। उनका कण्ठ खुल गया था। इससे प्रेमियों के मुखमण्डों पर प्रसन्नता की रेखा खेलने लगी। परन्तु पीछे जाकर उन्हें पता लगा कि वह तो दीपक-निर्वाण की अन्तिम प्रदीप्ति थी। सूर्यास्त का उजाला था।

उस समय स्वामी जी ने कहा कि आज इच्छानुकूल भोजन बनाइए। भक्तों ने समझा कि भगवान् आज अपेक्षाकृत कुछ स्वस्थ हैं, इसिलए अन्न ग्रहण करना चाहते हैं। ये थाल लगाकर श्री महाराज के सामने ले आये । स्वामी जी ने टुक देखकर कहा कि अच्छा, इसे ले जाइए । अन्त में प्रेमियों की प्रार्थना पर उन्होंने चनों के झोल का एक चमचा ले लिया फिर हाथ मुँह धोकर भक्तों के सहारे वे पलंग पर आ गये ।

शरीर की वेदना बराबर ज्यों की त्यों बनी हुई थी। श्वास रोग का उपद्रव पूरे प्रकोप पर पहुँच चुका था। पर वे शिष्य-मण्डली से वार्तालाप करते और कहते थे कि एक मास के अनन्तर आज स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ है। बीच-बीच में जब वेदना का वेग कुछ तीव्र हो जाता तो वे आँखें बन्दकर मौन हो जाते। उस समय उनकी वृति स्थूल शरीर का सम्बन्ध छोड़ देती-आत्माकारता को लोभ कर लेती ।

इसी प्रकार पल-विपल बीतते साँझ के चार बजने को आये । भगवान् ने नाई को बुलाकर क्षौर करने को कहा। लोगों ने निवेदन किया कि भगवान् उस्तरा न फिराइए। छालें फुँसियाँ कटकर लहू बहने लगेगा, परन्तु उन्होंने कहा कि इसकी कोई चिन्ता नहीं है। क्षौर कराकर उन्होंने नख उतरवाए । फिर गीले तौलिये से सिर को पोंछकर सिरहाने के सहारे पलंग पर बैठ गये ।

उस समय श्री महाराज ने आत्मानन्द जी को प्रेम से आहूत किया । जब आत्मानन्दजी हाथ जोड़कर सामने आ खड़े हुए तो कहा-वत्स, मेरे पीछे बैठ जाओ। गुरुदेव का आदेश पाकर वे सिराहने की ओर, तकिये के पास प्रभु की पीठ थामकर विनय से बैठ गये ।

महाराज ने अतीव वत्सलता से कहा – वत्स, आत्मानन्द, आप इस समय क्या चाहते हैं? महाराज के वचन सुनकर आत्मानन्द जी का हृदय भर आया। उनकी आँखों से एकाएक आँसुओं की लड़ी टूट पड़ी । गद्‌गद् गले से आत्मानन्द जी ने नम्रीभूत निवेदन किया कि यह, 'तुच्छ सेवक रात-दिन प्रार्थना करता है कि परमेश्वर अपनी अपार कृपा से श्रीचरणों को पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करें । इसे, इससे बढ़कर त्रिभुवन भर में दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है ।'

महाराज ने हाथ बढ़ाकर आत्मानन्द जी के मस्तक पर रक्खा और कहा - वत्स नाशवान् क्षणभंगुर शरीर को कितने दिन स्वस्थ रहना है। बेटा अपने कर्तव्य कर्म को पालन करते हुए आनन्द से रहना । घबराना नहीं । संसार में संयोग और वियोग का होना स्वाभाविक है। महाराज के इन वचनों को सुनकर आत्मानन्द जी सिसक कर रोने लगे । गुरुवियोग-वेदना को अति समीप खड़ा देखकर उनका जी शोक-सागर के गहरे तल में डूब गया ।

गोपालगिरी नाम के एक संन्यासी भी कुछ काल से श्रीचरण-शरण में वास करते थे। महाराज ने उनको आमन्त्रित करके कहा कि आपको कुछ चाहिए तो बता दीजिए । उन्होंने भी यही विनय की कि भगवन् हम लोग तो आपका कुशल-क्षेम ही चाहते हैं। हमें सांसारिक सुख की कोई भी वस्तु नहीं चाहिए । फिर महाराज ने दो सौ रुपये और दो दुशाले मंगाकर भीमसेन जी और आत्मानन्दजी को प्रदान किये । उन दोनों ने अश्रुधारा बहाते, भूमि पर सिर रखकर, वे वस्तुयें लौटा दीं। वैद्यवर भक्तराज श्री लक्ष्मणदास जी को भी भगवान् ने कुछ द्रव्य देना चाहा, परन्तु उन्होंने द्रवीभूत हृदय से कर जोड़कर लेने से इनकार कर दिया।

इस प्रकार अपने शिष्यों से गुरु महाराज की विदा होते देखकर आर्य जनों के चित की चंचलता और चिन्ता की प्रचण्डता चरम सीमा तक पहुँच गई। वे बड़ी व्याकुलता से सामने आ खड़े हुए। उस समय, श्री स्वामी जी, अपने दोनों नेत्रों की ज्योति सब बन्धुओं के मुखमण्डलों पर डालकर, एक नीरव पर अनिर्वचर्नीय स्नेह-संताप सहित, उनसे अन्तिम विदाई लेने लगे । उनके प्रेमपूर्ण नेत्र, अपने पवित्र प्रेम के सुपात्रों को धैर्य देते और ढाढ़स बंधाते प्रतीत होते

थे। महाराज प्रसन्नचित थे। उनके मुख पर घबराहट का कोई भी चिह्न परिलक्षित नहीं होता था।

परन्तु भक्त जनों की आशायें क्षण-क्षण में निराशा निशा में लीन हो रही थी। उनके उत्साह की कोमल कलियों के सुकोमल अंग पल-पल में भंग हुए चले जाते थे। वे गुरुदेव की दैवी देह के देव-दुर्लभ दर्शन पा तो रहे थे, परन्तु उनकी आँखों के आगे रह-रह कर आँसुओं की बदलियाँ आ जाता थीं। रुलाई का कुहरा छा जाता था। सर्वत्र निविड़ तमोराशि का राज्य दिखाई देने लगता था। वे जी (अपने मन व चित्त) को कड़ा किये कलेजा पकड़ कर खड़े तो थे, परन्तु खोखले पेड़ और भुने हुए दाने की भांति, मानो सत्व रहित थे।

ऐसी दशा ही में सायंकाल के पाँच बजने लगे। उस समय एक भक्त ने पूछा कि भगवन्, आपकी प्रकृति कैसी है ? श्री महाराजा ने उत्तर दिया कि अच्छी है, प्रकाश और अन्धकार का भाव है। इन्हीं बातों में जब साढ़े पाँच बजे तो महाराज ने सब द्वार खुलवा दिये। भक्तों को अपनी पीठ के पीछे खड़े होने का आदेश किया । फिर पूछा कि आज पक्ष, तिथि और बार कौन सा है? पण्ड्या मोहनलाल ने शिरोनत होकर निवेदन किया कि प्रभो, कार्तिक कृष्ण पक्ष का पर्यवसान और शुक्ल का प्रारम्भ है। अमावस्या और मंगलवार हैं।

तत्पश्चात् महाराज ने अपनी दिव्य-दृष्टि को उस कोठरी के चहुँ ओर घुमाया और फिर गम्भीर ध्वनि से वेद-पाठ करना आरम्भ कर दिया। उस समय उनके गले में, उनके स्वर में, उनके उच्चारण में, उनकी ध्वनि में, उनके शब्दों में किंचित भी निर्बलता प्रतीत नहीं होती थी।

भगवान् के होनहार भक्त, पण्डित श्री गुरुदत्त जी उस कमरे में एक कोने में भित्ति के साथ लगे हुए, भगवान् की भौतिक दशा के अन्त का अवलोकन कर रहे थे। टकटकी लगाये निर्निमेष नेत्रों से उनकी ओर देख रहे थे।

पण्डित महाशय महाराज के दर्शन करने पहले पहल ही आये थे। उनके अन्तःकरण में अभी आत्म-तत्व का अंकुर पूर्ण रूप से नहीं निकल पाया था। परन्तु श्री महाराज की अन्तिम दशा को देखकर वे अपार आश्चर्य से चकित हो गये । वे चैकसाई विचार से देख रहे थे कि मरणासन्न महात्मा के तन पर अगणित छाले फूट निकले हैं, उनको विषम वेदना व्यथित किये जाती है। उनकी देह को दावानल सदृश दाह-ज्वाला एक प्रकार से दग्ध कर रही है। प्राणान्तकारी पीड़ा उनके सम्मुख उपस्थित है। परन्तु महात्मा शान्त बैठे हैं। दुखःक्लेश का नाम-निर्देश तक नहीं करते। उलटे गम्भीर गर्जना से वेद-मन्त्र गा रहे हैं। उनका मुख प्रसन्न है। आँखें कमल सदृश खिल रही हैं। व्याधि मानों उनके लिए त्रिलोकी में त्रयकाल, उत्पन्न ही नहीं हुई। यह सहनशीलता शरीर की सर्वथा नहीं है, अवश्यमेव यह इनका आत्मिक बल है ।

यह पहला पल था कि जिस महर्षि की मृत्यु की अवस्था देखकर श्रीगुरुदत्त जैसे धुरन्धर नास्तिक के हृदय की उपजाऊ भूमि में आत्मिक जीवन की जड़ लग गई। इन भावों की विद्युत रेखा चमकते ही वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने क्या देखा कि एक ओर तो परमधाम को पधारने के लिए प्रभु परमहंस पलंग पर बैठे प्रार्थना कर रहे हैं और दूसरी ओर वे, व्याख्यान देने के वेश में सुसज्जित, उसी कमरे की छत के साथ लगे बैठे हैं। इस आत्म योग के प्रत्यक्ष प्रमाण को पाकर पण्डित महाशय का चितस्फटिक, आस्तिक भाव की प्रभा से चमचमा उठा। मानों एक ओर से निकलती हुई उनकी देह के दीप में प्रवेश कर गई।

गुरुदत्त अपनी गुप्त रीतियों से आत्मदाता गुरुदेव को फिर अतिशय श्रद्धा से देखने लगे। भगवान् वेद गान के अनन्तर, परम-प्रीति से पुलकित अंग होकर, संस्कृत शब्दों मे परमात्मदेव की प्रार्थना करने लगे। फिर आर्यभाषा में ईश्वर गुण गाते भक्तों की परम गति भगवती गायत्री को जपने लगे । उस महामन्त्र के पुण्यपाठ को करते-करते मौन हो गये। और चिरकाल तक सुवर्णमयी मूर्ति की भाँति निश्चल रूप से समाधिस्थ बैठे रहे । उस समय उनके स्वर्गीय मुख मण्डल के चारों ओर सुप्रसन्नता-प्रभात की झलमलाहट पूर्ण-रूप से झलमल कर रही थी।

समाधि की उच्चतम भूमि से उतर कर, भगवान् ने दोनों नेत्रों का पलक-कपाट खोलकर, दिव्य ज्योति का विस्तार करते हुए कहा – 'हे दयामय, हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है। सचमुच, तेरी यही इच्छा है। परमात्मदेव तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा ! मेरे परमेश्वर, तैने अच्छी लीला की ।'

इन शब्दों का उच्चारण करते ही, ब्रह्म ऋषि ने आत्मिक प्राण को ब्रह्माण्ड द्वारा परमधाम को जाने के लिये स्वर्ग-सोपान पर आरूढ़ किया ओर तत्पश्चात् पवन रूप प्राण को कुछ पल भीतर रोक कर प्रणवनाद के साथ बाहर निकाल दिया। उसे सूत्रात्मा वायु में लीन कर दिया।

इस प्रकार टंकारा व मथुरा से उदय हुआ ऋषि दयानन्द जी का जीवन-सूर्य देश-विदेश वा भूमण्डल में ईश्वरीय ज्ञान वेद की सत्य विद्याओं का प्रकाश सहित मानव मात्र के सर्वाधिक-पूर्ण हित की आभा विखेर कर अजमेर में दीपावली के दिन अस्त हो गया। हम ऋषि को कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं।

(साभार - मनमोहन कुमार आर्य)

प्रेषक : श्री हरिदेव रामधनी, आर्य रत्न, उपप्रधान आर्य सभा

Celebration of Deepavali and Commemoration of Rishi Nirvaan Diwas

Ravindrasingh Gowd

For ages Deepavalee has been celebrated in India and wherever the Indian Diaspora has settled down in different parts of the globe. It is one of the festivals that has crossed all religious barriers and is celebrated by people of different cultures in Mauritius and around the world. Last year, Deepavalee was celebrated at the White House by President Barack Obama of the United States of America. Light is a common factor that unites MAN. Wherever there is light, there is life, there is hope, and there is progress, power to overcome obstacles and fear.

Asato Maa sad Gamaya - *Lead us from untruth to truth*
Tamaso Maa Jyotir Gamaya - *Lead us from darkness to light*
Mrityo Maa Amritam Gamaya - *Lead us form death to immortality*

With physical light, man has been able to sustain life through provision of food, shelter and other necessities for a decent life through the adaptation of Science and Technology. With the spiritual light (Divine Knowledge), man can attain liberation by understanding his own self, humanity and the Divine Power. Although Deepavalee is associated with numerous historical events, the most undeniable reason is that it is a seasonal festival celebrated during the month of Kartic on New Moon (Amavasya) as per the Hindu calendar. It is also harvest time of certain crops like Moong, rice, maize etc. Food security has always been an important issue and at the same time an additional income means promotion of economic growth necessary for social developments and stability, hence time to rejoice.

However, Deepavalee also reminds us of an elevated Soul who left us for the abode of God on 30th October 1883 on this very day. One of the objectives of this Great Soul was to see an Indian society where social justice prevails and he contributed immensely for the upliftment of social, educational, economical, political development of the Indian sub continent. This Great soul was none other than Maharishi Dayanand Saraswati, a selfless, far sighted and courageous man.

Although born in an orthodox Brahmin family, the quest for truth and rationalism was guided by his inner self that brought him to Guru Virjananad Dandi, where his life changed completely with a new vision. Enriched by the teachings of the Vedas and Vedic scriptures, he set out to propagate these teachings to dispel darkness (ignorance) that prevailed for centuries in India. His work was very tough as he had to fight not individuals but beliefs that were anchored in the mind of people. As most of the population were illiterate, fear was thrust upon them to accept those unscrupulous persons, that their lives were determined by fate. India was on the decline in every respect at the beginning of the 18th century, be it socially, spiritually, economically or politically. With a literacy of 2%, the task was difficult but he did not lose hope. He remained unflinching and became the greatest reformer of Modern India.

Swamiji wanted to see a strong, healthy and progressive society of educated men and women free from the clutches of superstitious beliefs and blind faith, to give a true image of the Hindu culture, to free women from the social slavery. He challenged foreign rules and foreign doctrines and instilled in the people the pride and respect of an Aryan race. It was a wakeup call. He brought back the Vedas closer to the people and threw rays of hope to destroy the gloomy status that prevailed. Swami Ji found that the only way to save his people from that dark period was through education. However, this objective could only be met unless and until the people themselves are made to discover that education alone can enlighten their way to find a place of honour in society. This herculean task was made easy with the foundation of the Arya Samaj Movement in 1875 and the educational reform encouraged the people to shape their own life and stop believing that planets were responsible for their state of living.

Swami Dayanand was someone who was ahead of his time. Whatever he preached years back are being implemented throughout the world to-day via the United Nations, UNESCO and other Institutions . Human Rights, women's right, right to education for all, equal opportunity, preservation of the environment, respect among family members, and so on and so forth.

Swami Dayanand had a dream, a dream of oneness. He wanted to bring everyone under one faith, the faith of brotherhood, faith of love and make the whole world noble- Krinvanto Vishwamaryam. He wanted to bring back unity among all citizens as one family and to reach this objective, he gave a call of one God- Aum, one family –Vaisudev kutumbakam, one faith- Vedic Dharma, one source of knowledge- Veda, one law- the law of karma, one method of worship- Brahma Yaj (Sandhya), one way of living -truthfulness.

Deepavali is a day to remember and pay homage to this Great Soul who paid a heavy price in speaking the truth but opened the path of light to everyone without any discrimination.

Netaji Subash Chandra Bose, renowned and respected freedom fighter of India rendered a vibrant homage to Swami Dayanand when he said : *"Swami Dayanand Saraswati is certainly one of the most powerful personalities who have shaped modern India and are responsible for its moral regeneration and religious revival. His Arya Samaj is clearly and unquestionably one of the potent factors in rebuilding, reforming and rejuvenating the institutions of Hindu India".*

Arya Samaj and Deepavali

by Mrs Rutnabhooshita Puchooa, M.A, P.G.C.E

Arya Samaj means 'Noble Society', that is the society of good, broad-minded, virtuous, truthful, hard-working and honourable people. The first Arya Samaj was founded by the far-sighted seer, Maharishi Swami Dayānand Saraswati, in April 1875 at Mumbai (Bombay) India. At that time, as a result of centuries of slavery, first under the Muslim rule and later under the British imperialism, the plight of the Hindu society was appalling as it was afflicted with many social evils, immoral customs and traditions, superstitions, ignoble rites and rituals, inhuman and unjust malpractices and general ignorance.

Swami Dayānand Saraswati, the great Reformer of modern India, put forward the ten principles of Arya Samaj for its members to abide by. In fact, these ten principles represent a simple code of life, which, if followed meticulously, will no doubt make people attain *Moksha* or *Nirvāna* (salvation). Moreover, these principles will lead to a society which will be prosperous, happy and free from evils.

Swami Dayānand spread the message of the Arya Samaj across a vast area of India and many branches of Arya Samaj were established during his life time. He fought valiantly against falsehood, religious ignorance and social evils; he had the immense courage and fearlessness to point out defects and deficiencies prevailing in the various sects and religions in India at that time. Consequently, Swamiji had many enemies who wanted to get rid of him for their own vested interests and who finally succeeded in their wicked plan by giving him poison in his milk. The great Rishi passed away on Divali night on 30 October 1883.

The Arya Samaj has contributed immensely towards a prosperous and happy society. It has fought against untouchability, superstitions and ignorance, child marriage and dowry system, amongst other evils of society. It has restored respect for true religion based on Vedic principles. It has worked for the spread of education, especially education of girls and people of all classes thereby bringing about social mobility. It has opened schools and set up charitable institutions for the welfare of orphans and the destitute.

For Hindus, Deepāvali, the festival of lights, is one of the most important festivals. Different communities celebrate it for various reasons. One main reason is that in the month of Kartik, there is the first post-monsoon crop harvest in India. People perform Yajnas and offer special prayers to God; they wear new clothes and express great joy and share food and sweets with neighbours, friends and the poor. Moreover, they pray for good fortune, wealth and prosperity.

But the members of Arya Samaj celebrate Deepāvali by external cleaning, that is cleaning themselves, the house and the yard, by internal cleaning (that is showing good feelings such as friendship, love, forgiveness and caring). They perform Yajna, exchange gifts and cakes, distribute food and clothing in charitable institutions, and thus bring a ray of light in the life of destitute people.

Side by side members and well-wishers of the Arya Samaj commemorate the Rishi Nirvāna Divas; Swami Dayānand ji passed away on a Divali night. On Deepāvali day, we pay special tribute and express our eternal gratitude to Swamiji who made Hindus proud of their religion and culture, who roused patriotism in the mass, who promoted Hindi as the national language to unify the Indian population and inspired the Indians to fight for their independence.

Swamiji breathed his last on a Divali night. He infused light in the masses, removed the darkness of ignorance and gave them true knowledge as well as all-round education, by making them rational and critical-minded. He thus brought social mobility and prosperity for the whole population.

Members of the Arya Samaj have a greater mission: to celebrate Deepāvali not only by external cleaning, wearing new clothes, offering prayers, distributing food, cakes and other gifts and the lighting lamps but pay true homage to Maharishi Dayānand Saraswati by carrying out such activities that will bring a ray of light and happiness in the life of the needy /
Swami ji ko shat shat pranām aur koti koti dhanyavād.

Let our minds be lit with good thoughts and intentions and our hearts be filled with good wishes for one and all!

Happy Deepāvali to all!

Deepavali - festival of light

Dharamveer Gangoo, M.A, P.G.C.E, President Mauritius Arya Yuvak Sangh

Deepavali is the festival of lights. It is an auspicious occasion to open the gates of the mind as wide as possible and feel the presence of our near and dear ones far and wide with the thoughts that may they be happy and may the light of love always emanate from their hearts towards all fellow beings.

Depavali is the festival where we express our gratitude to God, the Almighty. It is the day when we pray ‘to lead us from untruth to truth, from darkness to light, from mortality to immortality.’ The festival of light marks the triumph of good over evil, truth over falsehood, love over hatred. It dispels darkness. Light stands for all that is good and wonderful. Deepavali gives us the golden opportunity to kindle our own inner light and improve our thoughts and actions. It also implies that we should develop new personality traits which are virtuous, be compassionate and share happiness within all. We should pray and work for the wellbeing of one and all.

On the occasion of Deepavali we also pay tribute to Maharishi Dayanand. He attained Nirvāna on Deepavali day. It is our binding duty to ponder and analyse the works of Swami Dayanand. He paved the way for everyone to tread on the path of righteousness. The Satyārtha Prakāsh provides a profound and deep study and reading for all of us in our endeavours to attain the true path of Vedic life. We rely on the vitality and inspiration of our youths to carry on the laudable work done by Swami Ji. We need the youths to join the Mauritius Arya Yuvak Sangh and contribute to the cohesive force and discipline for the benefits and of mankind.

May the light of Deepavali enter our thoughts and motivate our actions so that we move on the path of Dharma.

A Time of Renewal

Mithyl Banymandhub, M.A.,B.Ed

Divali is here once again
It is a time of celebration
Which reminds us invariably
Of the passage of time
Of the cycle of life

Rows of light crowd our imagination
And we travel back in time
To the inhabitants of Ayodhya
Young and old who were awaiting
The return of Lord Rama from exile

Light has travelled
Across the corridors of time
To reach us
And we are reminded of the joys
Of renewal, of sharing
In a world where selfishness prevails

We worship light
As we strengthen the links
That bind humanity
Thus providing the necessary link
To fight the forces of darkness

May the best in humankind be noticed
As we celebrate light
Let light enlighten us
As it lightens and brightens our path.

“ May Deepavali bring to all prosperity, health, peace and happiness.
May the festival of lights fill our minds with positive thoughts”

Deepavali Abhinandan

Women

Women are God’s Gifts
They are humble and affectionate
They are men’s sunshine
Without women, the world has no meaning.

Women are paragons of virtues
They are level headed
They are strong and powerful
They are men’s better-half and soulmates
Without women, men are incomplete.

Women are creators
They are source of strength
They are adorable and beautiful
They are compassionate
They have immeasurable patience
They have immense support.

Women are super role models
Behind a man’s success, there is a woman
They are goal-oriented
They are fashion models
They are super talented.

Women are an ocean of love
They are symbols of power
They are unshakeable faith
They are amazing.

Mrs Luxmee Jaypaul Diapermal

Creating balance between Rich and Poor

Raj Sobrun, B.A. (Hons) Counselling, MSc Social Development

Asme dhehi dyumad yasho
Magha-vad-bhyash cha mahyam cha
Sanim medhaam uta shravaḥ – *Rig Veda 9:22:6*

O Soma, O Source of inspiration flowing equally in the hearts of all mankind! Bestow on us shining fame that comes from wealth – both on those who are rich and on those of us who are poor. Grant us a charitable spirit, a sanctified intellect and the ability to listen.

As per the economist's views there is a critical imbalance in wealth accumulation that threatens human society and unless this imbalance is addressed in a practical way, poor people are doomed. It is seen that the rich are becoming richer and the poor are becoming poorer day by day.

The dominant focus among the upper class on earning more and more profits is becoming increasingly exploitative on the lower class. Experts admit that in many countries guilty of such exploitation, the GDP [gross domestic product] fails to gauge the material well-being of its citizens. In order to move in the direction of creating economically healthy societies, the above Mantra advises as follows:

1. Distribute wealth to both the rich and the poor

The key to achieving a thriving economy and a balanced society lies in re-distributing wealth in a way to empower poor people and see them grow. In a prospering industry, while managers get incremental raises in salaries, workers must also be given fair bonuses from accumulated profits. This would motivate them to work harder and harder to achieve their goals. With equal opportunity for all, greed and corruption will be weeded out, and progress and balance assured. In this way, a country earns not only a high GDP [gross domestic product] but also a high GNH [gross national happiness]. The fact is that poor people rebel only in those countries where they feel denied and wealth is concentrated in the hands of the upper class.

2. This wealth must lead to shining fame

Wealth meant to create a happy balance between rich and poor must be acquired by healthy means and not by foul means, like drug and human trafficking, dumping industrial waste in oceans where aquatic life is destroyed, poaching, illegal mining, etc. Wealth that creates prosperity will and must lead to shining fame.

3. Lord! Grant us the ability to listen

Wealth is a very good tool. Without wealth, we are denied many important resources, and our very survival becomes threatened. Wealth can make us arrogant, despicable and offensive. In order to prevent the negative impact of wealth it is very important that we learn to listen – listen to our inner voice, listen to scholars expounding wisdom from sacred writings, and listen to calls for help coming from those who are marginalized.

4. Lord! Grant us good understanding

When we listen, rationalize and internalize, we develop understanding and intelligence. That intelligence creates in us the ability to use wealth in a selfless manner.

5. Lord! Grant us a charitable spirit so that we can share

Rishis say that three things finally happen to wealth – either it is usurped, or inherited or given away in charity. The point is that it does not stay with anyone. Therefore, if that wealth has to be dispensed with, why not let it go to bring benefit to someone? The truth is that when we share, we care and when we care, we belong to each other.

6. God is the common source of inspiration flowing in the hearts of all humanity

God lives in the hearts of all of us – rich and poor – and inspires everyone alike to work hard and achieve important resources. So, come friend, in striving to establish a balanced society, let's learn how to view wealth, and how to share among those who do not have!!

Deepavali is the auspicious moment when one should reflect upon the importance and the method of sharing wealth in an equitable way to bring balance between the rich and the poor for the welfare of the society.

(Source Internet)

शरीर में प्राणों का संचरण

प्रणेता – राष्ट्रपति सम्मानित सुद्युम्न आचार्य

प्राचीन तथा आधुनिक प्राणि-विज्ञान के विद्वान् बताते हैं कि आखिर शरीर में प्राणों के संचरण का इतना अधिक महत्त्व क्यों है। आधुनिक युग में माना जाता है कि यह शरीर अनेक आकृतियों वाली सुसूक्ष्म असंख्य कोशिकाओं (cells) से निर्मित है। प्रत्येक कोशिका का अपना जीवन है। ये कोशिकाएँ प्रतिक्षण अपने जीवन-धारण के लिए आहार का उपभोग, ऑक्सीजन का उपयोग तथा मल उत्सर्जन करती रहती हैं। जिस समय हम गहन निद्रा में होते हैं । उस समय भी इनकी यह प्रक्रिया शान्त नहीं होती। शरीर के उत्तमांग मस्तिष्क आदि की कोशिकाओं के लिए तो यह प्रक्रिया प्रतिक्षण अत्यन्त अनिवार्य है ।

प्राचीन विद्वानों ने भी अध्यात्म की व्याख्या करते हुए इस व्याख्या के संकेत प्रदान किये हैं। योग सूत्र व्यास भाष्य में एक सुन्दर रूपक अलंकार के अन्तर्गत इस शरीर को मधुमक्खी का छत्ता, इन्द्रियों को मधुमक्खी तथा चित्त को इन मधुमक्खियों का राज़ बताया है।१ इस विवरण से तो ऐसा लगता है मानो यह शरीर विशाल मधुमक्खी का छत्ता हो, जिसमें छोटे-छोटे असंख्य डिब्बे हों, जिनमें अलग अलग जीवन रूपी रस भरा हो। इन कोशिकाओं को मोटे तौर पर सन्तरे की फाँको में पतली झिल्ली से घिरे हुए रसदार डिब्बों के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। ऊपर से एक दिखने वाला सन्तरा वास्तव में ऐसे सैकड़ों डिब्बों का समूह होता है ।

एक दिखने वाले शरीर की भी ऐसी ही स्थिति है। इस विवरण के अनुसार तो यह मानो असंख्य जीवधारियों की घनी बस्ती हो जिस बस्ती या शरीर रूपी नगर में इन अगणनीय कोशिकाओं का निवास हो। निरुलकार यास्क ने 'पुरुष' शब्द का निर्वाचन करते हुए माना कि यह जीवात्मा पर अर्थात् नगर में निवास करता है।२ इस व्याख्या के सन्दर्भ में यह शरीर कोशिकाओं का शहर है। इसमें इस शहर का अधीश वह रहता है, जिसका हम जीवात्मा के रूप में अनुभव करते हैं ।

प्रशस्तपादभाठय में इस अधीश को गृहपति के रूप में अलंकृत किया है। वहाँ भी रूपक अलंकार से कहा है कि जिस प्रकार पुत्र, पौत्र सन्तानों से भरे पूरे घर का मालिक उन्हें बताए बिना अनायास ही घर की टूट-फूट की मरम्मत करता रहता है, उसी प्रकार इस शरीर का मालिक जीवात्मा अघोषित रूप से शरीर के भग्न, क्षत का अनायास ही उपचार करता रहता है। इससे शरीर के अधिपति जीवात्मा की सूचना प्राप्त होती है। वचन इस प्रकार है –

देहस्य वृद्धिक्षतभग्नसरोहणादिनिमित्तरवाद् गृहपतिरिव ।

– प्रशस्तपाद्भाष्य, आत्मप्रकरण

इस प्रकार भरे पूरे सन्तान वाले के समान अथवा घनी बस्ती के समान इस शरीर की एक-एक कोशिका के लिए हर सेकेंड भोजन, पानी तथा ऑक्सीजन की व्यवस्था करनी पड़ती है। यह व्यवस्था कुछ इसी प्रकार की होती है, जैसी आजकल किसी घनी बस्ती के लिए की जाती है । हम जानते हैं कि ऐसी बस्तियों में शुद्ध पानी को पूरी तरह बन्द नाली वाले पाइप के सहारे सुदूर स्थान तक पहुँचाया जाता है । उसे पम्प करके ऊपर टंकी तक ले ज़ाया जाता है। अशुद्ध पानी को बहाने के लिए खुली तथा बन्द दोनों प्रकार की नालियों का उपयोग किया जाता है । कठोर खाद्य पदार्थ में पानी मिलाकर आग में पकाकर उसे गाढ़ा तरल पदार्थ का रूप दिया जाता है। ऑक्सीजन के लिए अलग से पाइप की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। उसे सीधे खुले वातावरण से प्राप्त कर लिया जाता है। वैसे, पर्यावरण-प्रदूषण के चलते, हो सकता है । आगे चलकर इसके लिए भी पाइप की व्यवस्था करनी पड़े !!

शरीर रूपी घनी बस्ती के लिए व्यवस्थाएँ तो सभी करती है, पर समस्या इससे बड़ी है। शरीर में एक ही प्रकार की धमनी या नाड़ी रूपी बन्द नाली है। यहाँ यह उल्लेख बहुत रोचक है कि नाड़ी शब्द तथा इसका मूल अर्थ 'नाली' ही है। संस्कृत के 'डलयोरभेद' के नियम अनुसार नाड़ी, नाली एक ही शब्दार्थ है। इस प्रकार आधुनिक 'नाली' विशुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध होता है।३

१. यथा मधुकर राजा ने मक्षिका उत्पतन्त मनूत्पतत्ति, निविशमान मनुविशन्ते तथेन्द्रियाणि पर शरीरावेशे चित्तमनुविधीयन्ते ।
– योग सूत्र ३.३८ पर व्याप्त भाष्य

२. पुरुषः पुरिशय – निरुक्त २.२१/५ शरीर बुद्धिर्वा..... तयोरसौ शेते विशेषेणास्ते इति पुरिशय सन् पुरुष इत्युच्यते – उक्त वचन पर दुर्गाचार्य

३. सांख्य में 'इन्द्रियप्रणालिका' शब्द के अन्तर्गत इसी अर्थ में 'नालिका' शब्द का प्रयोग किया गया है ।

शरीर की इस एक ही प्रकार की बन्द नाली के माध्यम से प्रत्येक कोशिका के लिए पोषक आहार, जल तथा ऑक्सीजन भेजने की व्यवस्था करनी है। अतः पोषक आहार में जस को मिलाकर रक्त में एक घोल प्राप्त किया जाता है। इस घोल में विलायक जल के अनिवार्य माध्यम होते हैं। रक्त के इस घोल को रक्त रस या plasma कहा जाता है।

परन्तु इस द्रव रक्तरस में ऑक्सीजन को भेजने की व्यवस्था किस प्रकार की जावे । समस्या यह है कि गैस रूपी ऑक्सीजन द्रव पदार्थ में बहुत कम घुलती है। स्वच्छ जल में ऑक्सीजन अवश्य ही उपस्थित होती है। पर उसका प्रतिशत बहुत कम होता है ।

पर शरीर में भरपूर मात्रा में ऑक्सीजन भेजने की व्यवस्था करनी है। अतः इसे उभयावतल चकत्ती या डुत्भ्नत्त अथवा बीच में दबे हुए गोल तकिया के आकार की रक्त कणिका (red blood corpuscle) रूपी छोटे-छोटे डिब्बों में बन्द करके इसी रक्त रस या plasma में तैराकर धमनी, केशिका जैसी बड़ी, छोटी बन्द नालियों के माध्यम से सुदूर स्थानों तक पहुँचाया जाता है । Plasma की इस विशेषता के कारण इसे संस्कृत में 'प्लाविका' भी कहा जाता है ।

इस स्थिति में आने पर प्राण वायु का स्वरूप बदल जाता है। वायुमण्डल से प्राप्त की गई । प्राण-वायु जो फेफड़े की कूपिकाओं में भर जाती है, वह रक्त की रक्त कणिकाओं में पूर्ववर्ती गैस के रूप में नहीं, अपितु Oxhaemoglobin नामक यौगिक के रूप में उपस्थित होते है । जल में यौगिक के रूप में या विलयन के रूप में प्राप्त ऑक्सीजन को हम गैस के रूप में नहीं, अपितु जल द्रव के रूप में पुकारना चाहते हैं । इसी प्रकार इस ऑक्सीहोमोग्लोबीन नामक यौगिर को कूपिकाओं में प्रविष्ट प्राण वायु के रूप में नहीं मान सकते । अतः यह मानना समुचित है कि धमनी में प्राण वायु की उपस्थिति नहीं होती। आज हम जानते हैं कि धमनियों में injection या अन्तर्धमनीवेध के समय सुई में से सावधानी पूर्वक वायु के लेश को भी निकाल दिया जाता है । क्योंकि यह वायु हृदय में प्रविष्ट होकर मरणान्तक हो सकती है।

परन्तु ऐसे संकेत मिलते हैं कि प्राचीन काल में कुछ लोग धमनियों को बात पूर्ण समझते थे तथा इस वायु के बल से धमनियों में रक्त संचरण स्वीकार करते थे। इसका प्रमाण स्वयं धमनी शब्द है। यह शब्द तथा इसके लिए प्रयुक्त धमा धातु ऋग्वैदिक है। निरुक्तकार ने इस धातु के अनेक अर्थ के साथ इसे वाङ्नामार्थक माना है । वैदिक तथा पश्चात कालीन प्रयोगों के अनुसार मुख से फूँक कर निकाल गई शंख आदि की आवाज़ उत्पन्न करने अर्थ में इस धातु का प्रयोग होता रहा है।१ अतएव धमनी शब्द के प्रयोग से इसे वातपूर्ण समझने की परम्परा प्रारम्भ हुई । यह उल्लेख बहुत रोचक है कि उस समय विदेशों में भी धमनी को वातपूर्ण समझा जाता था। यह वहाँ धमनी के लिए विकसित शब्द artery शब्द से प्रमाणित है। यह वायु अर्थ वाले airo से निष्पन्न ग्रीक शब्द arteria से विकसित है।२

परन्तु इसके ही समानार्थक ऋग्वैदिक 'गल्दा' शब्द से ऐसा कोई संकेत प्राप्त नहीं होता । निरुक्तकार ने माना है कि इसके इस नामकरण का कारण यह है कि इन धमनियों में गलन अथवा रक्त रस प्रवाहित होता है। (गल्दा धमनयो भवन्ति, गलनमासु धीयते – निरुक्त ६२४)

इस प्रकार दोनों प्रकार के प्रमाण उपलब्ध होने की स्थिति में यह प्रतीत होता है कि धमनियों की वात पूर्णता के सम्बन्ध में सन्देह बना रहा था। अतएव धमनी की दो प्रकार की व्याख्याएँ उपलब्ध होती है। एक ओर वैदिक-ग्रन्थों में कहा है कि रस वाहिनी धमनियों वायु-सञ्चरणशील होती है । (धमन्यो रसवाहिन्यो धमन्ति पवनं तनौ।) दूसरी ओर 'ध्यानाद् धमन्यः'। इस चरक संहिता वचन की यह व्याख्या की जाती है कि धमनियों रक्त-रस का बलपूर्वक विक्षेषण करती है। (ध्मानं रक्तस्य बलाद विक्षेषणम् - चरक प्रत्यक्ष शरीर, धमनी खण्ड पर कविराज गणनाथ से न विरचित व्याख्या)।

ऊपरीलिखित विवेचन से यह प्रकट है कि यही मत समुचित है। धमनियाँ रक्त कणिकाओं के माध्यम से सुदूर स्थानों में ऑक्सीजन पहुँचाती हैं । यह सच है। साथ ही धमनियाँ वातपूर्ण नहीं होतीं। यह भी एक साथ सच है। पूर्वोलि ऑक्सीहीमोग्लोबीन नामक यौगि के आधार पर हम इन्हें वातपूर्ण नहीं मान सकते । यौगिक के सम्बन्ध में विज्ञान के विद्वानों का मानना है कि यह दो या अधिक तत्वों के रसायनिर बन्धन से निर्मित होता है। उसमें मूल तत्वों से सर्वथाभिन्न गुण उपलब्ध होते हैं । यह वैद्युत अपघटन आदि विधियों से असमान गुण वाले तत्वों में विभाजित हो जाता है । रक्त में ....

१. शंखस्य ध्मायमानस्य - शतपथ ब्राह्मण १४.५.४.९

2. Artery - from Greek arteria from 'airo' raise Oxford English Dictionary

रुधिरवर्णिका (hemoglobin) नामक प्रोटीन पाया जाता है। इसमें वर्तमान लोहे का प्रत्येक परमाणु ऑक्सीजन के उच्च दबाव में ऑक्सीजन के एक अणु को बाँधकर ऑक्सीहीमोग्लोबीन नामक यौगिर बनाता है । अब यह यौगिर गुण तथा आकार में ऑक्सीजन से सर्वथा भिन्न है। अतः यौगिर रूप में ऑक्सीजन की उपस्थिति में भी यह रक्त या रक्तकणिक वातपूर्ण नहीं है ।

अभी ऊपर कहा गया कि कोई यौगिर वैद्युत अपघटन जैसी विशिष्ट विधियों के बिना अपघटित नहीं होता । पानी को जमाकर या वाष्प के रूप में उड़ाकर भी उसके तत्वों के रूप में अपघटित नहीं किया जा सकता। पर कमाल है शिथिल बन्धन वाला यह 'ऑक्सीहीमोग्लोबीन' नामक यौगिक । .... यह कोशिकाओं में जाकर रसायनिर प्रतिक्रिया के फल स्वरूप ऑक्सीजन को विमुक्त कर देता है ।

ऊपरिलिखित संक्षिप्त विवेचन यह प्रकट करने में सक्षम है कि धमनियों को वातपूर्ण मानना समुचित नहीं है। प्राणायाम के द्वारा कूपिकाओं में अधिक प्राण वायु को ठूँस कर ऑक्सीजन का उच्च दबाव उपस्थित किया जाता है। इससे कूपिकाओं की झिल्ली को पारकर अधिक वायु रक्त में प्रविष्ट होकर ऑक्सीजन से सन्तृप्त अधिकाधिक यौगिक बनाने में सक्षम होती है। भौतिक विज्ञान के नियमानुसार ऊर्जा अथवा गैस आदि का प्रवाह उच्च दबाव से कम दबाव की ओर होता है, अधिक मात्रा से कम मात्रा की ओर नहीं । प्राणायाम के द्वारा यही कार्य सम्पन्न किया जाता है ।

शरीर में अधिक प्राणों का उपयोग ऐच्छिक तथा अनैतिक दो प्रकार से किया जाता है। दौड़ते समय श्वास अनैच्छिक रूप से तीव्र गति से चलने लगती है । क्योंकि उस समय अधिक ऊर्जा उपमुक्त होतीं । अतः अतिरिक्त ऊर्जा की प्राप्ति के लिए अधिक ऑक्सीजन की माँग होती है। इस दशा में हमारी इच्छा के बिना हमारा शरीर अधिक ऑक्सीजन को आपूर्ति करता है । परन्तु प्राणायाम ऑक्सीजन आपूर्ति की ऐच्छिक संक्रिया है । इससे हम थकान के बिना अधिक ऊर्जस्वी बनने में सक्षम होते हैं। जिस प्रकार रक्त रस में ग्लूकोज़ के अणुओं के महीने पैकेट में हम ऊर्जा आबाद्ध करते हैं, उसी प्रकार ऑक्सीहीमोग्लोबीन के पैकेट में ऑक्सीजन आबद्ध करते हैं। आवश्यकता होने पर तत्काल इस पैकेट से ऑक्सीजन प्राप्त करके ग्लूकोज़ का दहने करके ऊर्जा उपलब्ध करते हैं। सचमुच यही रहस्य है प्राणायाम के कमाल का ।

अविस्मरणीय दिवाली

डॉ० बीरसेन जागासिंह

आज भी मुझे स्मरण है !
दिवाली की शाम
बेल रोज़ स्टेट स्थित
बालाँस खेत की वह शाम
मित्र के साथ मनाई थी
गन्ने काटते हुए दिवाली !
दस-ग्यारह बजे तक
आधी रात घर लौटे थे
जब दीये बुझ गए थे
पूरा गाँव सो गया था
चारों ओर सन्नाटा था
दूर कहीं भौंक रहे थे
गाँव के अवारा कुत्ते !
सरकारी नल तले बैठकर
ठंडे पानी से काँपते हुए
खूब स्नान किया था !
घर के लोगों की
बिना निद्रा भंग किए
ठंडे भात के साथ
भुंनी चौराई खायी थी
भूख लगी थी पेट भरा था !
फिर ओढ़कर गोनी
लुड़क गया था
कल नींद आई थी
पता नहीं चला
सवेरे मुँह अंधेरे
पहुँचा था बालाँस खेत !
सरदार ने बाद में
बताया था कि
तेरह टन गन्ने काटे थे
मित्र और मैंने मिलकर !
बात यह पुरानी है
तब से पुल तले
अथाह जल बह गया
श्रमिक से शिक्षक
शिक्षक से प्रशिक्षक
आदि मंजिलें पार कीं
प्राकृतिक जीवन बनता गया
कृत्रिम और बनावटी
सुख-सुविधाएँ तो हैं
परन्तु फिर वैसी दिवाली
कभी नहीं आई लौटकर
न कभी वैसी भूख लगी
न भोजन का आनंद मिला !
श्रम से नाता नहीं तोड़ा
श्रमिक स्वरूप या शिक्षक
परंतु श्रम और फल मध्य
मेरा रंग-रूप-स्वभाव
मेरा नाम भी जाने क्यों
बाधक बन गए हैं !
देव दयानन्द के मार्ग
सत्य के अर्थ अनुरूप
चला पर प्रकाश न मिला !
भूल नहीं सकता मैं
बालाँस खेत की वह
श्रमसाध्य दिवाली !

स्वामी दयानन्द और आर्षग्रन्थ

पण्डित यश्वन्तलाल चूड़ामणि, एम.एस.के, आर्य भूषण, प्रधान आर्य पुरोहित मण्डल

समस्त वैदिक सिद्धान्त वेद पर आधारित है। इस वर्तमान युग में आर्षग्रन्थों के प्रचार की नींव युग-प्रवर्तक गुरु विरजानन्द सरस्वती ने रखी और इस अभियान को उनके आदर्श शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती ने चलाया। गुरु विरजानन्द ने संस्कृत वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया – आर्ष और अनार्ष । उन्होंने वैदिक काल के ऋषिप्रणित ग्रन्थों को आर्ष तथा महाभारत काल के बाद सामान्य पुरुषों की लिखी पुस्तकों को अनार्ष घोषित किया। उनका कहना था कि केवल आर्षग्रन्थ ही सर्वमान्य हैं क्योंकि वे सार्वभौम सत्य का प्रतिपादन करते हैं और संशयनाशक तथा लोकोपकारक हैं। अनार्षग्रन्थ भ्रमोत्पादक तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता, द्वेष, घृणा और प्रमाद से भरे पड़े हैं। आर्षग्रन्थों का लोप तथा मनुष्यकृत ग्रन्थों और अविवेकी भाष्यों का प्रचलन ही भारत की दुर्गति के कारण बताये जाते हैं। गुरु विरजानन्द जी को पूर्ण विश्वास था कि आर्षग्रन्थों का पुनर्प्रचलन ही सुधारों का मूल है, कुरीतियों और कुप्रथाओं को मिटाने का सबसे उत्कृष्ट साधन है । परन्तु इस कार्य को करे कौन ? उन दिनों उनके पास जो शिष्य पाठ लेने आते थे, उनमें कोई ऐसा नहीं था जो इस कार्य को कर सक्ते ।

गुरु विरजानन्द जी ने राज्य-शासकों की सहायता से आर्षग्रन्थों के प्रचार की बात सोची । कुछ शिष्यों के साथ वे महाराजा रामसिंह से मिलने आगरा गये । उन्होंने राजा को समझाया कि अनार्षग्रन्थों के पठन-पाठन से देश में बहुत अमंगल हो रहा है। ये कौमुदी, मनोरमा, न्यायमुक्तावली, पुराणादि नवीन सम्प्रदायी ग्रन्थ अशुद्ध हैं। इन्हीं के कारण देश का पतन हो रहा है । वेदोक्त धर्म ही सत्य और सनातन धर्म है अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन शास्त्र आदि आर्षग्रन्थ पढ़ने से ही राजा-प्रजा दोनों का भला होगा। गुरु विरजानन्द ने अनेक प्रकार से राजा रामसिंह को आर्षग्रन्थों का महत्व बताया। परन्तु राजा चुपचाप सुनते रहे। गुरु जी वहाँ से चल पड़े । सोचा शायद बाद में राजा उत्तर देंगे परन्तु उनका उत्तर उन्हें कभी नहीं मिला । फिर उन्होंने कश्मीर के महाराजा रणवीरसिंह और ग्वालियर के जयाजीराव सिन्धिया को अपने आशय-पत्र भेजे। किसी ने भी उत्तर नहीं दिया । राजाओं से निराश होकर उन्होंने साम्राज्ञी विक्टोरिया को भी पत्र भेजा । वहाँ भी सारे यत्न निष्फल रहे ।

सब ओर से निराश होकर गुरु विरजानन्द को यही चिन्ता थी कि उनका लोक-हितकारी चिन्तन उन्हीं के साथ समाप्त हो जाएगा। ऐसा सोचते-सोचते कई बार वे रोने लग जाते थे। उन्हें पता था इस आर्षग्रन्थ रूपी महाज्योति को कोई साधारण मनुष्य धारण नहीं कर सकता है। उन्हीं के सदृश कोई अखण्ड तेजस्वी ब्रहमचारी, प्रभुभक्त योगी, तपस्वी अलौकिक पुरुष ही इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी अपने कन्धों पर ले सकता है । वे सोचते रहे कि ऐसी कोई महान् आत्मा इस पृथ्वी पर है भी या नहीं ? परन्तु ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है !

बुधवार १४ नम्वबर १८६० अर्थात् कार्तिक शुक्ल द्वितीया एक चिरस्मरणीय ऐतिहासिक दिन है। वैसे तो मथुरा में प्रतिदिन असंख्य तीर्थयात्री और संन्यासी आते रहते हैं परन्तु उस दिन छत्तीस वर्षीय एक अत्यन्त ही दिव्य मूर्ति ने मथुरा में पदार्पण किया। सच्चे शिव और मृत्यु का रहस्य जानने के लिए वर्षों से वह निरन्तर घूम रहा था । बहुत सारे योगियों और साधुओं के दर्शन किये परन्तु उनकी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति नहीं हुई। पाँच साल पूर्व हरिद्वार में वे स्वामी पूर्णानन्द जी के पास पहुँचे थे और उनसे व्याकरण पढ़ाने का आग्रह किया था। उस समय स्वामी पूर्णानन्द जी की आयु लगभग एक सौ आठ वर्ष की बताई जाती थी । उन दिनों उन्होंने मौन धारण किया हुआ था। अतः लिखकर उन्होंने निर्देश दिया – व्याकरण पढ़ना चाहते हो तो मथुरा में मेरे योग्य शिष्य विरजानन्द के पास जाओ । वे तुम्हारी मनोकामना पूरी करेंगे – आज वही ज्ञानाभिलाषी दिव्य मूर्ति ने गुरु विरजानन्द की कुटिया का दरवाज़ा खटखटाया । अन्दर से आवाज़ आई – कौन है? उत्तर मिला - यही तो मैं जानने आया हूँ। दण्डी विरजानन्द ने उनसे वही प्रश्न पूछा जो प्रायः किसी भी छात्र को स्वीकार करने से पहले पूछा करते थे – 'कुछ व्याकरण पढ़े हो'? उत्तर मिला – 'हाँ महाराज । सारस्वत आदि व्याकरण ग्रन्थ पढ़े हैं ।' गुरु विरजानन्द की कुटिया का दरवाज़ा खोला गया, दरवाज़ा क्या खुला, भारत का भाग्य ही खुल गया । दरवाज़ा खटखटाने वाली वह दिव्य मूर्ति वही स्वामी दयानन्द जी थे जिसने युवक मूलशंकर के नाम से पन्द्रह वर्ष पूर्व सच्चे शिव की खोज और मृत्यु का रहस्य जानने के लिए घर छोड़ा था। कुछ शर्तों के साथ गुरु विरजानन्द ने उन्हें पढ़ाना स्वीकार किया। उन में एक शर्त यह थी कि अब तक पढ़े सभी अनार्ष ग्रन्थों को पूर्णतया भूल जाना होगा । ऐसा किये बिना ऋषिप्रणीत आर्षग्रन्थों का प्रकाश हृदय में कभी नहीं हो सकेगा । दयानन्द ने शर्त स्वीकार की।

तीन वर्षों तक स्वामी दयानन्द ने पूर्ण अनुशासन के साथ गुरु से व्याकरण की शिक्षा पाई। शिक्षा पूरी हो जाने पर गुरु-दक्षिण में जब स्वामी दयानन्द ने लौंग अर्पित किया तो गुरु ने उनसे कुछ और मांगा – 'वत्स ! आज अनार्षग्रन्थों की बाढ़ आई हुई है । अनेक मत-मतान्तर और कुरीतियाँ प्रचलित हैं। वैदिक धर्म का लोप हो चुका है । मुझे आर्षग्रन्थों के प्रचार के लिए तुम्हारा जीवन चाहिए । यही गुरु-दक्षिणा है । दे सकते हो तो प्रतिज्ञा करो कि जब तक जीवित रहोगे, तब तक वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने और भारत से मत-मतान्तरों एवं अनार्ष ग्रन्थों के अज्ञानन्धकार को नष्ट करने का प्रयत्न करोगे' – दयानन्द ने कुछ क्षण गम्भीरता से विचार किया, फिर गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य किया। गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया और पुनः उसे सचेत किया – 'इतना याद रखना कि मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा भरी पड़ी है, परन्तु आर्षग्रन्थों में यह दोष नहीं है। यही आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों की परख है। इस कसौटी को हाथ से कभी नहीं छोड़ना ।'

आर्षग्रन्थों का प्रचार करने तथा अनार्षग्रन्थों और मत-मतान्तरों के चक्रव्यूह को तोड़ने का दृढ़ संकल्प धारण कर दयानन्द ने गुरु से विदा ली । दयानन्द की गुरु-प्रतिज्ञा का फल आज हम सब चख रहे हैं ।

दीपावली ऋषि दयानन्द और नारी

पंडिता अन्जनी महिपत, शास्त्री

दीपावली प्रकाश का महान् तथा पावन पर्व है। दीपावली महोत्सव कार्तिक अमावस्या को भव्य रूप से मनाया जाता है। कार्तिक अमावस्या की रात का अन्धकार सबसे अधिक घना होता है। दीपावली अन्धकार पर प्रकाश की विजय का महोत्सव है। इस घनघोर अन्धकार को मिटाने के लिए दीपावली की रात्रि को हिन्दू समुदाय सैंकड़ों दीप जलाकर प्रकाश करते हैं। उस समय गगन में तारे टिमटिमाते हैं और धरा पर दीप जगमगाते हैं। दीपावली का इस मनोहर दृश्य देखकर हृदय में उमंग भर जाता है, लेकिन यह तो बाहरी प्रकाश है ।

कुछ मानवों के अन्तःकरण में अविद्या और अज्ञान का अन्धकार अच्छादित है, इस अन्धकार को कैसे मिटाया जाय ? उत्तर मिलता है कि इस अन्धकार को विद्या और ज्ञान के प्रकाश से मिटाया जाय । जिस समय भारतीय जनता अविद्या और अज्ञान के अन्धकार में फँसकर सही दिशा भूल गयी थी, उस समय मानवता की मूर्ति ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने गुरु बनकर समाज-सुधार का कार्य करने के निमित्त समाज में पदार्पण किया । वे अपने साथ वेद-ज्ञान का प्रकाश लेकर पधारे थे। उन्होंने वेद-ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। वे वेद के प्रचार-प्रसार में संलग्न हो गये। उनके अथक प्रयास से अज्ञान की काली रात ढली । निरीह जनता की आँखों से अज्ञान की पट्टी खुली और उसे प्रकाश मार्ग दिख पड़ा ।

वेद में नारी के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'स्त्री ही ब्रह्मा विभूविथ' वैदिक काल में नारी को ब्रह्मा के समान ऊँचा स्थान दिया गया था। कुछ नारियाँ वेद विद् थीं। शास्त्रार्थ करती थीं। रण में शस्त्र भी उठाती थीं, परन्तु दुर्भाग्य से कालान्तर में नारी को उतनी ऊँचाई से नीचे धरा पर गिरा दिया गया । नारी पैर की जूती बन गई। वह चारदीवारी में अविद्या और अज्ञान के अन्धकार में घुटने लगीं थी। उसका सारा अधिकार छीन लिया गया । बाल-विवाह जैसी कुप्रथा प्रचलित हुई । अल्पायु में ही कन्या को विवाह-बन्धन में बाँध दिया जाता था और वह अशिक्षित और अबोध कन्या यौवणावस्था में ही विधवा बन जाती थी। उस समय परिवार और समाज में उसका तिरस्कार होता था।

दया के सागर देव दयानन्द नारियों के लिए उद्धारक बनकर आये थे। वे नारी का बहुत आदर-सम्मान करते थे। उन्होंने नारियों की दयनीय दशा देखकर उनपर दया की कृष्टि की। वे नहीं चाहते थे कि कोई भी कन्य, कोई भी गृहिणी और कोई भी माँ अशिक्षित रहे । उनके मत में यह विचार था कि 'ध्रुवासि धरुणे'। अर्थात् तू ध्रुव है। गृहस्थी रूप घर का आधार है। तुझसे बड़े-बड़े ज्ञानी जन्म लेते है। इसलिए उन्होंने नारियों के लिए शिक्षा का द्वार खोस दिया । उन्होंने स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन चलाया । समाज में प्रचलित कुरीतियों और कुप्रथाओं को जड़ से उखाड़। बाल-विवाह जैसी कुप्रथा को तोड़ा और पुनर्विवाह का विधान किया, ताकि विधवाएँ भी समाज में चैन की साँस ले सकें ।

स्वामी जी ने घर के उत्तरदायित्व सम्भालने वाली शिक्षित गृहिणी, मातृ-शिक्षा द्वारा बच्चों का निर्माण करने वाली शिक्षित माता और सामाजिक कार्यों में हाथ बटाने वाली शिक्षित समाज सेविका की आवश्यकता समझी, इस लिए उन्होंने नारी के सर पर शिक्षा का ताज पहनाकर कन्या पाठशालाएँ और कन्या-विद्यालय खुलवाये । उन्हें यज्ञ-

हवन करने और वेद-पढ़ने का अधिकार दिलवाया । आज ऋषि दयानन्द की महत्ती कृपा से नारी समाज में यज्ञ-हवन कर रही है । मंच पर खड़ी होकर प्रवचन दे रही है और उच्च पद पर आसीन है। अतः नारी-उद्धार और नारी -उत्थान में ऋषि दयानन्द का सबसे बड़ा हाथ रहा है । आज ग़रीब से ग़रीब माता-पिता अपनी कन्या को उच्च शिक्षा दिलाने में अथक प्रयास कर रहे हैं ।

ऋषि दयानन्द ने भारतीय जनता को अविद्या और अज्ञान के अन्धेरे से हटाकर ज्ञान के प्रकाश का मार्ग दिखाया । सौभाग्य से देव दयानन्द दीपावली के दिन ही जगमगाते दीयों के प्रकाश-मार्ग महाप्रयाण किया। उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ । दीपावली महोत्सव का महत्व और भी बढ़ गया, क्योंकि उसी दिन आर्य समाजी उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए ऋषि-निर्वाण दिवस मनाते हैं ।

वेद ग्रन्थ का धरती पर आना

पंडित राजमन रामसाहा, आर्य भूषण

अनेक बार सृष्टि और प्रलय हो चुके हैं । परमात्मा ने मनुष्य को हर बार की तरह वर्तमान सृष्टि दी है। मनुष्य धरती पर जब आए, तब ईश्वर ने उसे ज्ञान दिया। ईश्वरीय ज्ञान के कारण मनुष्य संसार में भाषा का ज्ञान पाने लगा । वह भाषा ही के बल पर अनुभवों की राशियों को इकट्ठा करने लगा ।

परमात्मा ने पूर्व सृष्टि में चार पवित्र आत्माओं के कर्मों को देखकर उन्हें इस सृष्टि के प्रथम गुरु बनाया। वे चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरस नाम से विख्यात हुए। प्रत्येक के हृदय में एक-एक वेद ज्ञान को स्थापित किया । इन चारों के कथित ज्ञान को समझने के लिए हजारों ऋषि आए थे। सभी के सभी मानव के आदि सृष्टि में परमात्मा की दी हुई व्यवस्था से ही आए थे। वे ऋषि गण ही हमारे पितर हुए। हमारे पितर वेद समझने वाले ऋषि थे। मन्त्र-स्रष्टा ईश्वर हैं। उन मन्त्रों को सही अर्थ दे पाने वाले हजारों ऋषि गण हैं । ऋषि गण मन्त्र-द्रष्टा हैं। इसी कारण से हम सब अपने को ऋषि सन्तान कहते हैं। हम अपने को लंगूर या जंगली सन्तान नहीं कहते । ऐसा कहना हम मनुष्यों की होशियारी नहीं। तभी तो हम मनुष्य दूसरे किस्म के सभी प्राणियों से अलग होते हैं ।

मनुष्य अपने ज्ञान के कारण ही जीवन बिताने में पूर्ण स्वतन्त्र है। इस स्वतन्त्रता ने उसे बड़ी-बड़ी इच्छाएँ दी हैं। वह अपनी स्वतन्त्रता से अपने जीवन में खुशहाली या बरबादी भी ला देता है। वह स्वयं अपने दुख और सुख का कारण बनता है। हमेशा से संयम-नियमों से सुधरे हुए लोग कम होते हैं। बहुतेरे लोग सुधरे लोगों को देख-देखकर अपने को सुधार कर सभ्य बनते हैं। हम मनुष्य ज्ञान का संस्कार लेकर जन्म ले सकते हैं पर उस संस्कार को उभारने का माध्यम न हो, तो हम अनजान ही बने रह जाते हैं।

धरती पर मनुष्य अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के न्याय पर आते-जाते हैं। वे धरती पर प्रत्येक सृष्टि के प्रलय के बाद प्रवाह से आती सृष्टि में आते रहने की सदा से परिपाटी निभाते हैं। प्रकृति का लुप्त होना फिर प्रकट होना प्रवाह से है। परमात्मा अपनी सृष्टि को सुचारु रूप से गठित करते हैं।

मन्त्रों की भाषा ईश्वर प्रदत्त है। वह भाषा कभी मनुष्य प्रयोग नहीं कर सके । ऋषियों ने मन्त्रों से शब्दों का चयन कर बोलचाल की भाषा बनाई। वह मनुष्य की प्रथम शुद्ध भाषा बनी थी। मन्त्रों को हम वेद-भाषा में होना मानते हैं और वेद मन्त्रों से जिस प्रथम भाषा को ऋषियों ने तैयार किया था, उसे संस्कृत नाम दिया गया था। मन्त्रों को वेद भाषा अर्थात् परमात्मा की भाषा में पढ़ा जाता है। वह कभी भी बोलने की भाषा नहीं बनी है। वेद भाषा मनुष्य के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम कभी नहीं रही ।

मन्त्रों को प्रारम्भ में श्रवण करना धर्म बनाया गया। मन्त्र ही श्रुति कहलाए। आज भी हम कर्म काण्ड में श्रुति के नाम से ही मन्त्रों को सुनते रहते हैं ।

वेद को हम ज्ञान का आगार कहते हैं। वेद हर सृष्टि में बराबर बना रहता है। गत सृष्टि से चार पवित्रात्मा उस ज्ञान को लेकर इस सृष्टि के आरम्भ में देने आए। इस सृष्टि के अन्त में सारा ज्ञान जैसे सभी किरणें सूर्य में समा जाती है वैसे ही परमात्मा में समा जाएगा। फिर प्रलय काल ठहरेगा । प्रलय काल के बीतने पर जब सृष्टि करने का समय आयेगा तब परमात्मा उस ज्ञान को फिर प्रकाशित करेंगे । अतः हर सृष्टि के आरम्भ में वेद का प्रकट होना और सृष्टि के अन्त में उसके समा जाने की बात को हम आर्य सन्तानें मानती हैं ।

प्रत्येक सृष्टि में वेद-ग्रन्थ संसार की प्रथम रचना बनकर सामने आता है । संसार में देखा जाता है कि मनुष्य को

योग्य बनाने के लिए ज्ञान देने की आवश्यकता पड़ती है। बिना ज्ञान के मनुष्य पशुवत होता है। यह पाप और पुन्य में अन्तर नहीं जान पाता है। ज्ञान के बल पर ही मनुष्य ने मूर्खता को पाप माना और सत्य ज्ञान को पुन्य समझा।

दयानन्द और वेद

पंडित धर्मेन्द्र रिकाई, आर्य भूषण

वैदिक सभ्यता का इतिहास बताता है कि एक समय ऐसा था जब सभी वेदों को मानते थे, वेदों के अनुसार आचरण करते थे। सारे विश्व में एक ही धर्म 'वैदिक धर्म' एक ही पूजा-पद्धति यज्ञ तथा एक ही इष्ट देव 'ओ३म्' की उपासना करते थे। सभी सुखी सम्पन्न थे।

महाभारत काल के बाद एक समय ऐसा आया, जब मंत्र मात्र रह गये, वेदों का पठन-पाठन लुप्त हो गया । लम्बे समय तक वेदों के अर्थ ज्ञान के बिना स्मृति-बल पर वेद कायम रहे ।

ऐसे समय के बाद ऋषि दयानन्द का आगमन हुआ । यह ब्रिटिश काल था। उन्होंने घोषणा की – हे संसार के लोगो अगर तुम जीवन के अन्दर सुख, शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हो तो 'वेद की ओर लौटो' क्योंकि मानव जीवन का आधार वेद है । ऋषि दयानन्द ने देख लिया था कि भारत का ही नहीं, संसार भर का उद्धार हो सकता है तो वेद ही से हो सकता है।

महर्षि दयानन्द ने १८७४ से १८८३ के अपने कार्यकाल में अपने भाषणों और ग्रन्थों द्वारा वेदों की धूम मचा दी थी। उनका महान् और अद्वितीय ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और वेद विषयक कई छोटी पुस्तकें सन् १८७८ तक प्रकाशित हो चुकी थीं। उनके ऋग्वेद भाष्य और यजुर्वेद भाष्य का बहुत सा भाग भी सन् १८८३ तक अपने जीवन काल में ही प्रकाशित हो चुका था। ये दोनों भाष्य इनके निर्वाण के बाद भी छपते रहे । यजुर्वेद का भाष्य छपना सन् १८८९ में समाप्त हुआ और ऋग्वेद भाष्य छपना सन् १८९९ में । ऋषि दयानन्द के वेद विषय इस आन्दोलन से अनेक अनेक विज्ञानों का ध्यान वेदों की ओर गया। इनमें से अनेक विद्वानों की वेद में विद्या-विज्ञानों के होने के सम्बन्ध में वही संपत्ति बनी जो महर्षि दयानन्द की है।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहा है। आर्यसमाज के प्रथम नियम में उन्होंने परमेश्वर को सब सत्य विद्याओं का आदि मूल अर्थात् उन्हें सिखाने वाला आदि गुरु बताया है । इस प्रकार इन दो नियमों को अच्छी तरह से देखने पर ऋषि का यह मन्तव्य सामने आता है कि आदि सृष्टि में वेद का प्रकाश जिसमें सब सत्य विद्याओं का उपदेश दिया गया है, परम गुरु परमात्मा ने ही किया था। वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताकर ऋषि ने अपनी यह मान्यता अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दी है कि वेद में विविध प्रकार के ज्ञान विज्ञानों का उपदेश दिया गया है । इसी भाव को ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के 'वेद विषयक विचार' प्रकरण में इन शब्दों में व्यक्त किया है ।

विज्ञानकाण्ड, कर्म काण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड के भेद से वेदों के चार विषय हैं। अतः ज्ञान काण्ड ऋग्वेद का विषय है, कर्म काण्ड यजुर्वेद का, उपासना काण्ड सामवेद का तथा विज्ञान काण्ड अथर्व वेद का। ऋषि दयानन्द विज्ञान काण्ड की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि 'इनमें विज्ञान काण्ड का विषय सबसे मुख्य है क्योंकि इसमें परमेश्वर से लेकर तृण पर्यन्त विषयों के सब पदार्थों का ज्ञान समाविष्ट है ।

सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है – 'जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है। जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार-भ्रमजाल से छूटकर विद्या-विज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहे और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जाय। यहाँ भी ऋषि ने यही बताया है कि करुणा के सागर दयालु परमात्मा ने सब मनुष्यों पर अपनी कृपा- दृष्टि रखते हुए वेद का उपदेश इस लिए दिया है कि उन्हें विद्या-विज्ञान के सूर्य का प्रकाश मिले । उनका अज्ञानान्धकार दूर हो सके ।

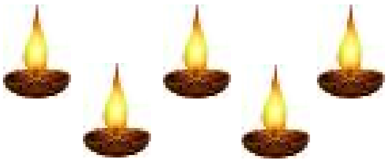

दीपावली की अग्नि प्रज्वलित करें

पं० कविराज खेदू, शास्त्री

हर प्राणी सुख की कामना करता है। उत्तम सुख प्राप्त करने के लिए हमें कैसे कर्म करने चाहिए । चलें हम यजुर्वेद के इस मन्त्र पर विचार करें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्ते स्वाहा
वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा वृहस्पते स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ।।

शब्दार्थ :– अग्नये स्वाहा - अग्नि के लिए श्रेष्ठ क्रिया, सोमाय स्वाहा - औषधियों के शोधन के लिये उत्तम क्रिया, आपाम् - जलों के सम्बन्ध से जो, मोदाय स्वाहा - आनन्द के लिए सुख पहुँचाने वाली उत्तम क्रिया, सवित्ते स्वाहा - सूर्य मण्डल के अर्थ उत्तम क्रिया, विष्णवे स्वाहा - विजुली रूप आग में उत्तम क्रिया, इन्द्राय स्वाहा - जीव के लिए उत्तम क्रिया, वृहस्पतये स्वाहा - बड़ों को पालन करने के लिए उत्तम क्रिया, मित्राय स्वाहा - मित्र के लिये उत्तम क्रिया, वरुणाय स्वाहा - श्रेष्ठ के लिए उत्तम क्रिया ।

यह मन्त्र, यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करने का उपदेश देता है। जो भी इन आदेशों का पालन करेगा, वही उत्तम सुख प्राप्त करने का अधिकारी बनेगा ।

मन्त्र कहता है 'अग्नये स्वाहा' अर्थात् अग्नि के लिये उत्तम क्रिया करो । यज्ञ में भौतिक अग्नि को बढ़ाने के लिये उत्तम कर्म करना है, जैसे कि सूखी समिधा, शुद्ध घी, ऋतु अनुसार सामग्री आदि आहूत करना । इन सबके अतिरिक्त अगर श्रद्धा न हो तो कार्य पूरा नहीं होगा । कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य अग्निर्विद्या सीख न ले, अग्नि प्रज्वलित नहीं कर सकता ।

इसी संदर्भ में कठोपनिषद् की प्रथम वल्ली में नचिकेता यमाचार्य से आग्रह करता है –

सत्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो, प्रब्रूहित्वं श्रद्धानाय मयम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त, एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।।

अर्थात् हे यमाचार्य ! आप उस स्वर्ग प्राप्त कराने वाली 'अग्नि' को जानते हैं। हे मत्यो ! मैं श्रद्धा-पूर्वक पूछता हूँ। आप मुझे उसका उपदेश दें। जो स्वर्गलोक में जाते हैं, उन्हें अमृतत्व-अमरता प्राप्त होती है इसलिए 'स्वर्ग-साधक अग्नि' का आप उपदेश दीजिए। द्वितीय वर, मैं यही माँगता हूँ। '

यमाचार्य बोले -

प्र ते ब्रवीमि तदुमे निबोध,
स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां,
विद्धि त्वमेतं निस्तिं गृहाथाम् ।।

'हे नचिकेता ! मैं उस 'स्वर्ग-साधक अग्नि' को जानता हूँ। मैं कहूँगा, तू समझ। उसके द्वारा अनन्त-लोकों की प्राप्ति होती है, उन लाकों का वह आधार है। परन्तु हाँ, यह समझ ले कि वह 'अग्नि' गुहा में निहित है – उसका जानना समझना एक रहस्य को समझने के समान है ।

पाठकगण, जो भी स्वर्ग की कामना करता है, वह यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करे। 'स्वर्ग' को लेकर अनेक मतभेद फैले हुए हैं, आइये, देखें कि महर्षि दयानन्द ने अपने मन्तव्यामन्तव्य मनतन्य में 'स्वर्ग' के बारे में क्या कहा है :— 'स्वर्ग' नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है । प्रतिदिन अग्निहोत्र करते समय, साधक 'ओम् अग्ने स्वाहा' उच्चारण करके आहुति दालता है। परमात्मा ने वेद मन्त्र दिया, ताकि मनुष्य मन से, वचन से और कर्म से उसे अपना सके । यहाँ पर भौतिक अग्नि के अलावा, अग्नि राजा को, ज्ञानी पुरुष को, आचार्य को, गुर को, शरीर में उर्जा को भी कहा गया है, इनके प्रति हम क्या श्रेष्ठ कर्म कर रहे हैं ? हमें विचार करना चाहिए।

मन्त्र का अगला शब्द 'सोमाय स्वाहा' है अर्थात् सोम के लिए श्रेष्ठ कर्म, उत्तम कर्म करना । प्रश्न है कि 'सोम्' क्या है ? सोम्, ओषधि को कहते हैं, वनस्पति को कहते हैं, सब्ज़ियों को, फलों को कहते हैं। इनके रसों से जिससे हमारे शरीर में रूधिर उत्पन्न होता है, उसे 'सोम' कहते हैं। सोम की वृद्धि के लिये हम क्या कर रहे हैं? क्या हम अच्छी सब्ज़ियाँ पैदा कर रहे हैं ? अच्छे फल पैदा कर रहे हैं ? या केवल अपनी आमदनी हेतु, समय से पहले अनाज काट-पका कर बेच रहे हैं, खाद्य पदार्थों में मिलावट, सब्ज़ियों में रसायन (Chemicals) का प्रयोग करके

समय से पहले तैयार कर देते हैं, केले में ऐसे ही रसायन के प्रयोग से जल्दी से पका देते हैं, जिनसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो रहे हैं, क्या यही 'स्वाहा' है ? यही श्रेष्ठ कर्म है ? यज्ञ है ? नहीं, यह परोपकार नहीं है। यह व्यक्ति का स्वार्थ है, यज्ञ करके, 'ओम् सोमाय स्वाहा' बोलकर आहुति डाल देने से और व्यवहारिक रूप में उल्टा करना, श्रेष्ठ कर्म नहीं है। आज से हमें विचारना है कि हम स्वर्ग प्राप्ति के लिये कर्म कर रहे हैं या रोगी बनकर नरक को प्राप्त हो रहे हैं ।

मन्त्र में आगे आता है 'आपांमोदाय स्वाहा' अर्थात् 'आप' जल को कहा है और आप्त पुरुषों को भी कहते जो हमें अपने उपदेश से पवित्र तथा आनन्दित करते हैं, उनके प्रति 'स्वाहा' अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करना चाहिए। उनके प्रति कौन सा श्रेष्ठ कर्म करें ? उनका सेवा-सत्कार करें, आदर करें, उच्च स्थान प्रदान करें ।

इस विषय में मनु महाराज कहते हैं –

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसंवितः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ।।

अर्थात् जो सदा नम्र सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है। उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनकी आयु आदि नहीं बढ़ती हैं।

'सवित्रे स्वाहा' का अर्थ हुआ सविता, सूर्य, सर्वोत्पादक, नेता, सूर्य के समान वेजस्वी का आदर करो, सूर्य के प्रकाश व ताप के ज्ञान को प्राप्त करके उनका सदुपयोग करो। स्वयं में सविता के गुणों को अपनाओ, जैसे कि प्रजा को उत्पन्न करना, ऐसी-वैसी सन्तान को उत्पन्न मत करना और उत्पन्न करके सात्विक अन्नों से उसका पालन करना और बड़े होने पर्यन्त प्रेरणा देते रहना, सुशिक्षित करते रहना और मन में भी अच्छे-अच्छे विचारों को उत्पन्न करना, जोकि सात्विक अन्न तथा स्वाध्याय से सम्भव है।

'वायवे स्वाहा' - वायु के समान तीव्र, गतिमान्, शत्रुरूप वृक्षों को उखाड़ने में समर्थ होना, सेनापति, राजा, वायु के समान जीवनाधार पुरुषों का आदर करो। पूजा का अर्थ है आदर करना जैसे कि श्री कृष्ण जी की पूजा द्वापर युग से लेकर आज तक होती है । वायु और प्राण का सदुपयोग करो । वायु की शुद्धि के लिये यज्ञ-महायज्ञ का आयोजन करो ।

'विष्णवे स्वाहा' का अर्थ हुआ सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना स्तुति, प्रार्थना सही ढंग से करना।

उपासना का अर्थ है, ईश्वर के पास होना, उनके गुणों को अपनाना । प्रायः लोग ऐसा कहते हैं कि ईश्वर तो सर्वव्यापक है वह तो हर प्राणी में है, बाहर है, भीतर है तो उनके पास जाने की क्या आवश्यकता । इसका समाधान इस प्रकार से है कि जैसे आइने पर जब धूल जम जाने से पास होते हुए वस्तु का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही मद, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि की धूल आत्मा पर छा जाने से ईश्वर के पास नहीं जा सकते । उपासना के लिए इन विकारों को दूर करना पड़ेगा ।

'स्तुति' का अर्थ है जो वस्तु जैसी है, उसको वैसा मानना, जानना और बोलना, तो ईश्वर को जानने के लिये उनके गुण, कर्म और स्वभाव को भली-भांति जानना चाहिए, जो केवल वेद पढ़ने से सम्भव है । 'प्रार्थना' का अर्थ है माँगना । उसी ईश्वर से माँगना, जो सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। क्या सबकी माँग पूरी होती है? हाँ, ईश्वर दयालु है, वे सबकी माँग पूरी करते हैं, परन्तु उचित समय आने पर उचित वस्तु ईश्वर प्रदान करते हैं, धैर्य धारण करना चाहिए ।

'वृहस्पते स्वाहा' - बड़े से भी बड़े, ब्रह्माण्डों के पालक परमेश्वर की उपासना करो। वृहती, वेद वाणी के पालक विद्वानों का आदर करो, पितरों का आदर करो । पितर कौन? जो जीवित माता, पिता, चाचा, चाची, दादा, नाना, गुरु आदि, बड़े जन जो अपनी वाणी तथा विचारों से हमें पवित्र करते हैं। उनके प्रति हम श्राद्ध और तर्पण करें। 'श्राद्ध' उसे कहते हैं जो श्रद्धा से कोई वस्तु किसी को अर्पण किया जाये। 'श्रद्धा' शब्द दो शब्दों से बना है; सत्य धारण अर्थात् जब हम किसी गरीब को वस्त्र दें, तो पहनने योग्य वस्त्र दें। भोजन दें तो साफ़, पवित्र भोजन दें आदि-आदि।

'तर्पण', तृप्त करने को कहते हैं। जिस समय जिसको जो वस्तु चाहिए। उसी वस्तु से उसे तृप्त करें, जैसे कि अगर किसी को ज़ोर से भूख लगी हो तो उसे छाता दें तो वह तृप्त नहीं होगा । उसे भोजन ही से तृप्त कर सकते हैं। जिज्ञासु को धन-दौलत से तृप्त नहीं कर सकते, उसे तो ज्ञान से ही तृप्त कर सकते हैं। वैसे ही अनेक विषयों में समझ लेना चाहिए।

'मित्राय स्वाहा' - सबसे स्नेही, मृत्यु से बचाने वाले परमेश्वर की उपासना करो। स्नेही पुरुष जो सुख-दुख में साथ न छोड़े उनके प्रति कृतज्ञ रहें । स्नेही न्यायाधीश, जो राष्ट्र के कल्याण के लिए अपराधी पर न्याय करके

दया करता है, उनको हम समाज में मान-सम्मान करें। पत्नी का सम्मान करें, गुरु का सम्मान करें । उनके प्रति श्रेष्ठ कर्म करें, जिनसे उनकी तृप्ति हो ।

प्रस्तुत मन्त्र के अन्त में कहा गया 'वरुणाय स्वाहा' अर्थात् दुष्टों के वारक, रक्षक, सबसे श्रेष्ठ योग्य पुरुष का आदर करो, परमेश्वर की स्तुति करो ।

मन्त्र में अग्नि के लिये, सोम के लिए, जल के लिये, आनन्द के लिये, सावित्री के लिये वायु के लिए, विष्णु के लिये, वृहस्पति के लिये, मित्र के लिये और वरुण के लिए हमारा कर्तव्य क्या है, दर्शाया गया है। ये सब ईश्वर के नाम उनके गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर गिनवाये गये हैं, जिनको हम मनुष्यों को धारण करके अपने जीवन के लक्ष्य को सफल बनाना है ।

Deepavali & Dayananda – The Sunnyasi, Reformer & Activist

Sookraj Bissessur, B.A, Hons

"I offer my homage of veneration to Swami Dayanand Saraswati, the great path maker, in Modern India who through bewildering tangles of creeds and practices, the dense undergrowth of the degenerate days of his country cleared a straight path that was meant to lead the Hindus to a simple and rational life of huge devotion to God and service for man."

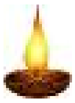

Ravindra Nath Tagore – the Bard, Poet / Philosopher 1933
(Dayanand's Commemoration Volume –Page 2-3)

One of the greatest makers of history who left the world better that it was is Maharshi Dayanand Saraswati. His creation, the Arya Samaj, came into being at the appropriate time, when (Mother) – India was ridden with dogmas and superstitions. India was looking forward to such a reformer who would raise her to her position of eminence she enjoyed in the very days of yore.

Monumental Social Reconstruction

Fresh from the ashram of his Guru, Virjananda Saraswati Dayanand set himself to the herculean task of overhauling the society. He proved to be a Social Reformer of no mean order. It did not take his penetrating insight long to detect the cause of the disintegration of the Hindu society. Women had no status, and a rigid caste system had destroyed the lives of millions of people. The brave Maharshi resolved to take not a moment's rest till were righted the wrongs of the society. He fought tooth and nail, day and night, to bring his erring countrymen to see reason, with the positive result, that the eternal Vedic truth – that woman is 'Samrajni' – which started to dawn upon even the most orthodox Hindus.

It is quite difficult to understand Dayanand's philosophy without ever realizing his emphasis on merit. His strong belief was that merit alone ought to be the hall mark of man's greatness. By birth, all are equal. He alone is low whose acts are low. To him, the Vedas were authoritative in this matter. The Rig Veda Mantra, comparing the society to a human body, lays down in unequivocal terms that the Brahmana is he who functions in the same way as does the head, a 'Kshatriya' cannot but be a protector of the people, while a 'Vaishya' – is one who acquires wealth for the general good and welfare of the society. According to the same mantra, a 'Shudra' is he who serves the people of his country. He is not to be looked upon down, because service to others is by no means ignoble.

It is a happy sign that the lead given to the Harijan movement by Mahatma Gandhiji has helped considerably and was to a great extent built on the sound efforts of Maharshi Dayanand. Every enlightened Hindu, today agrees that the 'Untouchables' ought to be placed on equal footing with the rest of the society.

In fact, if man comes to be judged by his merits, flatters and fawning sycophants, who earn their living by degrading themselves will cease to have any place in society to the relief of the meritorious. Dayanand strongly pleaded with his country to 'scorn delights' and live laborious days, if ever they wished to achieve greatness. In the dark days of Indian history, the lower castes lived in constant fear of the higher ones and India herself had lost herself respect to the benefit of their "European masters". At this momentous hour Maharshi Dayananda came forward with a 'Magic Mantra' to rid the Indian society of its inferiority complex which had stultified a whole nation.

Logical faith & Great sense of Rationalism

Dayanand utilised rationale in his beliefs and in addition he was a logician and a debater whose intellectual ability even the ablest follower of the 'Narya Nyaya' – School of Navadvipa would have envied. He had always understood that faith could not go far without reason. Dayanand recognised the claims of reason without denying those of intution. He

always steered the middle course. He was no extremist. If Dayananda's reason, carried conviction, his entire faith build on the strong rocky reason was unshakeable. It could move mountains. It was not suprising then that Swami Dayanand had ushered in one of the greatest religious revolutions that modern India has witnessed. To an era cloyed with religion one can find a potential ally that religion can impart glory to life.

Dayananda more than a Social Preceptor Religious Reformer

To think of Dayananda as a Social and Religious Reformer alone is to miss his significance. His greatness as a social reformer may be gauged by the fact that every political, social or religious leader and worker acknowledge him as one of the greatest social workers in whatever field he engaged himself. For instance to the 'Swarajists' Dayanand was a champion of 'Swaraj'.

Child Marriage – a Bane - not a Boon

As a Social reformer, Swami Dayanand was without parallel. It is to be recalled that Harbilas Sarda was fired with strong enthusiasm on coming into contact with him. It was on the occasion of the semi centenary of Dayanandas death held at Ajmer that Sarda recounted how he imbibed the words of Swamiji who had said that child marriage was only a bane not a boon. India is well acquainted with Harbilas Sarda's life long fight against social evils. Swamiji totally rejected the theory that the Brahman was formed out of God's mouth and so on. To him this was a "mere distortion of the fact - relating to scriptures which had clearly laid down that the 'Varna – Vyavastha' - ought to depend on 'guna' quality, 'karma' action and svabhava 'nature' of any person not his birth.

Conluding Remarks

India had expressed her strong individuality once more as a great nation, through Swami Dayananda. It's thanks to him that India has been liberated from prejudices that had gnawed away her own self.

On Divali night, when every Hindu house will be lip up and adorned with 'diyas', let everyone turn his/her attention on this great ascetic. A great and memorable scene occurred in Binai, Kutir, Ajmer on Deepavali night in 1883. Silently, Rishi Dayanand breathed his last with the following words. "Let thy will be done" on his lips which shimmered like a burning and bright. If by his life, he taught us how to lead a life of glory, by his death, he taught us how to die courageously.

A Deepavali lamp is brought to shimmer/shine in very corner of darkness. So, should be the function of an educated person who should goes to the world to care for the underprivileged.

Where is the sweetness of knowledge and love our Maharishi taught us to share and care? Where is the Light to show us the path of Truth? The answer resides in the deep delving, serious scrutiny and profound perusal of Satyartha Prakash / Light of Truth.

Happy Deepavali to all.

ओ३म्

मिलकर दीप जलाओ, मंगलकारी हो दिवाली
अपने घर का दीप जलाकर, हो घर-घर दीप दिवाली
शुभ मंगलकारी, है आई दिवाली

आरोह तमसो ज्योति, श्रुति वेद की वाणी ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय है शास्त्र वाणी ।।
ओ३म् अग्निमिले पुरोहितम श्रुति-वाणी कल्याणी।
दीप जलाकर दुनियाँ से अन्धकार भगाओ ।।
दूर करें अंधियारा सारा घर-घर-दीप जलाओ ।
शुभमंगलकारी, है आई दिवाली ।

लेकर मन में खुशियाँ सारी, आई-दिवाली
युवा-वृद्ध सब बच्चे मिले, मनाएँ दिवाली
खेलें ऐसे खेल निराले, हँस मिल गाकर
जिससे हो उज्ज्वल मन काले, दीप जलाकर
मंगल गाएँ धूम मचाएँ, मिलकर दीप जलाएँ
शुभ-मंगलकारी, है आई दिवाली

बम पटाखे कमी न फोड़ें, दीपावली में
बुरी आदतें सारी छोड़ें, दीपावली में
व्यर्थ न फेंकें रुपये पैसे, गंदे खेल में
दान करें और पुण्य कमाएँ, दीपावली में
जुआ ताश पर रोक लगाए, मंगल दीप जलाओ ।

पं० श्याम धनेश्वर दाख्रू

ऋषि की कल्पना और वर्तमान आर्य व आर्यसमाज

डॉ० श्रीमती चेतना शर्मा ब्रदी

ऋषि दयानन्द जी की कल्पना थी कि सब वेद पढ़े, सुविचार बने, बल पाएँ, बढ़ें नित ऊपर को - आज स्वामी जी के निर्वाण-दिवस पर हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हम स्वामी जी की कल्पना पर कितने खरे उतरे हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है स्वामी जी की आत्मा वर्तमान आर्यों और आर्यसमाज की दशा को देखकर बहुत ही दुखी होती होगी, क्योंकि आर्यसमाज का उद्देश्य पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है। दूसरे धर्म और मतों के प्रचारक हमारे वैदिक व पौराणिक धर्म में दोष बताकर खड़े-खड़े धर्म परिवर्तन करा रहे हैं। और अफ़सोस कि हमारे धार्मिक नेता कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। एक समय था जब स्वामी जी अकेले भरी सभा में ईसाइयों व मुसलमानों को वैदिक धर्म का अनुयायी बनाते थे, आज तो विद्वानों, स्वामियों, साधु-संतों से दुनिया भरी हुई है लेकिन कोई सुधार नहीं, हमारे लोग दिन- व-दिन वैदिक धर्म से दूर होते जा रहे हैं।

आज आर्यसमाज को १४१ वर्ष हो गये हैं, लेकिन स्वामी जी के सपनों का आर्यसमाज दिखाई नहीं देता । इसके लिए हमें बार-बार सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करते रहना ज़रूरी है। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने घोषणा की थी कि - जैसा आर्यसमाज आर्यवर्त की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। क्या हमें अधिकार पूर्वक स्वामी जी की वह घोषणा याद करने की आवश्यकता है जो उन्होंने दूसरे समाजों के काम से अप्रसन्न होकर कहा था कि - जिस देश को रोग हुआ उसकी औषधि तुम्हारे पास नहीं। उन्होंने वेद को उन्नति का आधार बताया था।

स्वामी जी की यह भविष्यवाणी हमारे कारण सफल नहीं हुई या स्वामी जी को हमसे कुछ अधिक आशा थी, उनका मूल्यांकन ग़लत निकला । इसका कारण यह है कि स्वामी जी द्वारा दिखाई गयी दिशा से हम भटक रहे हैं। हमसे क्या भूल हुई, क्या छूट गया, इन सब बातों पर विचार करना चाहिए। मात्र ५१ वर्ष की आयु में आर्यसमाज की स्थापना की, भारत के कोने-कोने को छान डाला, कहाँ क्या बुराई है, यह भी तब जबकि आधुनिक साधन भी नहीं थे। देश के नागरिक किस प्रकार अनुशासन और नियमों में रहकर योग्य बनें, इसलिए श्रेष्ठ व उत्तम नागरिक बनाने के लिए आर्यसमाज की योजना साकार बहुई थी।

स्वामी जी ने लोगों में फैली बीमारी को बहुत पास से देखा था, उसका कारण जानकर उसे दूर करने का प्रयास किया क्योंकि शिक्षा खान-पान, भेष, विचार भी हमारे अपने नहीं रहे थे। ये सब देखकर स्वामी जी को लिखना पड़ा – 'तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे' स्वामी जी का सपना था कि शिक्षा, संस्कृति एवं संस्कारों का प्रचार हो । हमारे आचार्यों, उपदेशकों, पुरोहित-पुरोहिताओं का रहन-सहन, खान-पान एवं व्यवहार वेदानुकूल हो ताकि वे आर्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार कर सकें । घर किसी भी समाज की महत्वपूर्ण इकाई होता है, इसलिए घर की महिलाएँ चाहे माँ, सास, पत्नी, बेटी, बहू, नाती-पोती, किसी भी रूप में हो, शुभ गुणों से युक्त और चरित्रवान हो, क्योंकि कहा भी गया है – देवियाँ देश की जिस दिन संभाल जायेंगी, सारी समस्याएँ अपने आप ही सुलझ जायेगी।

वेद के अनुसार शिक्षा हो विद्यालयों में, वेद विद्या का पाठ पढ़ाया जाय जिससे अपनी संस्कृति और संस्कारों की रक्षा हो सके। आश्रम-व्यवस्था का पालन, वर्ण-व्यवस्था गुण व कर्म के अनुसार हो, आहार-व्यवहार शुद्ध हों। वेद के माध्यम से शिक्षित बालक-बालिकाएँ अविद्या, अन्धविश्वास, कर्त्तव्यहीनता आदि दोषों से प्रभावित नहीं होंगे, निश्चय ही समाज और देश का सौभाग्य उदय होगा क्योंकि यदि भावी पीढ़ी मज़बूत है तो भविष्य भी उज्ज्वल होगा ।

हम सब ईश्वरस्य पुत्रः के अनुसार परमात्मा के पुत्र एवं पुत्रियाँ है । हमारी संज्ञा आदित्यासों में होती है। वेद में कहा गया है। ते ही पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मत्यार्य। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्त्रम् ।। उस परमपिता परमात्मा अखंड शक्ति के वे ही वास्तविक पुत्र और पुत्रियाँ है, जो मनुष्यों के जीवन के लिए अक्षय-ज्योति प्रदान करते हैं। स्वामी जी के निर्वाण दिवस पर आर्यसमाज के सभी सेवक सेविताओं को प्रण लेना चाहिए कि जन-जन में और घर-घर में वेद ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित करें। सारे परिवार, समाज, देश और संसार को यदि हम वेद रूपी ज्ञानाग्नि से प्रकाशित कर सकें तो सही अर्थों में स्वामी जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी और अमावस्या का अंधकार प्रकाश में परिवर्तित हो जाएगा ।

अमावस्या का जलता दीपक

सोनालाल नेमधारी, आर्य भूषण

दीपावली का त्योहार श्री रामचन्द्र जी से जुड़ा है। इसको भुलाना असम्भव है। सीता-माता को वापस लाने निमित्त समुद्र में पुल बाँधना पड़ा था। उनके इंजीनियरों ने मज़बूत और पक्के पुल का निर्माण किया, सागर पार करके लोगों ने लंका पर चढ़ाई की और सीता-माता को वापस लाए। राक्षस राज्य समाप्त हुआ। उस पुल का अवशेष आज भी सागर के गहरे पानी में देखा जा सकता है। एक दूसरी घटना वन की है। सीता माता के कहने पर रामचन्द्र जी मृग के पीछे भागते हैं। सोने के हिरण की चाह जो सीता के मन में जागी, तो राम को उसके पीछे जाना ही पड़ा। रावण तो ताक में था ही। चाल कामयाब हुई, लगता था। पुकार सुन कर सीता ने लक्ष्मण को भाई की सहायता के लिए भेजना चाहती थी। कठोर वचन का प्रयोग किया। लक्ष्मण को दोनों की आज्ञाओं का पालन करना था। उनके पास भी दिव्य शक्ति थी। बाण की नोक से ज़मीन पर धूल में एक रेखा खींचते हैं, जिसे लक्ष्मण-रेखा से आज तक माना जाता है। उस रेखा को कोई पार नहीं कर सकता था। जलने का भय था। पर सीता को ही पार करना पड़ा और रावण उसका हरण करके ले गया। यह तो काफ़ी पुरानी बात है। क्या आज भी लक्ष्मण रेखा का नामोनिशान है। हम उससे भ्रमित हैं तो कहाँ पर, किस भूमि पर, किस सागर में, किसी धार्मिक मंच पर तो विचार करना आवश्यक है ।

डंके की चोट पर पाखण्ड का द्वार टूट गया। वेद पाठ का सिलसिला चल पड़ा, पढ़ाई-लिखाई में सभी को बराबर का हक़ मिल गया। आज का संसार लाभान्वित हो रहा है। किसी को किसी भी क्षेत्र में जाने से कोई रोक नहीं सकता। पुरुष और महिला बराबर कदम बढ़ाकर चल रहे हैं। दोनों पहिये बराबर घूम रहे हैं। हर क्षेत्र का निरीक्षण कर देख सकते हैं। महिलाएँ कहाँ नहीं पहुँच गयी हैं। कोई रोक नहीं सकता, अपने बलबूते पर। बैसाखी की आवश्यकता नहीं है। सामाजिक क्षेत्र, पारिवारिक क्षेत्र, राजनीतिक क्षेत्र । पर धार्मिक क्षेत्र तक आते-आते कदम रुक जाते हैं, ठहर कर पीछे देखते हैं तो इस क्षेत्र में महिलाएँ पीछे छूट रही हैं। कर्मकाण्ड और धार्मिक अनुष्ठान में कदम-कदम मिलाकर चल रही हैं। पंडिताई, पुरोहिताई, शादी-व्याह धार्मिक कार्य और टी.वी. वार्ताएँ बराबर कर रही हैं। कोई त्रुति नहीं कर रही हैं। यज्ञ, हवन, संस्कार और सभी धार्मिक कृत्य कर रही हैं। वहीं एक दूसरा वर्ग है। जो हमारे मंदिर सनातन धर्म मानने वालों के है। हर मंदिर में पुरुष पंडित, पुरोहित और आचार्य नज़र आते हैं। किसी महिला को पुजारिन का काम करते नहीं देखते हैं। धार्मिक-क्षेत्र में वे महिलाएँ आगे ही आगे रहती हैं। पुरुष दो कदम पीछे-पीछे उनके पीछे चलते आते हैं। ऐसा क्यों? क्या वे रेडियो पर बोल नहीं सकती हैं। टी.वी. पर आवाज़ नहीं निकाल सकती है? समाज में अपने विचार प्रस्तुत नहीं कर सकती हैं, योग्य हैं विदुषी हैं। तो ऐसी दो नज़र क्यों? कौन उन्हें मंच पर चढ़ने नहीं देता। कोई व्यवस्था ही होगी। मुख्य कारण क्या है। नीच दृष्टि से महान नारी को देखना कितना बड़ा पाप है। क्या किसी और अवतारी पुरुष की प्रतीक्षा है। कब कोई आकर पहले किस को सही राह बतायेगा। चारों युगों में अनेक अवतार हुए तो क्या सभी पाप नष्ट हो गये ? कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती भी अवतारी पुरुष थे। अमावस्या की रात्रि को प्राण त्यागे। पर वे जो जलता दीपक छोड़ गये हैं। उसका प्रकाश आज भी है। एक दीपक से ही लाखों दीपक जलाये जाते हैं। उन्होंने नहीं कहा था? मैं सिर्फ़ आर्यसमाजी लोगों के लिए जल रहा हूँ। दूसरे वर्ग उस ओर नहीं आ सकते। उन्होंने कोई लक्ष्मण रेखा नहीं खींची। लक्ष्मण की खींची रेखा धूल में थी। कब की मिट गयी। अगर वर्तमान समाज में जो रेखा लोगों के मन में खींची लगती है, वह कब मिटेगी। हिन्दू समाज के मन में यह रेखा आयी कैसे ? लक्ष्मण-रेखा हमारे लिए नहीं थे। सीता-माता के लिए थी। रावण से बचने के लिए। हमारा हिन्दू समाज किस रावण की प्रतीक्षा में ऐसी रेखा को मन में बिठाये घूम रहा है। माता व बहनें ऐसे सतायी जाती रहेंगी तो महिला समाज की अगली पीढ़ी से हम कैसी संतान की आशा रख सकते हैं। नारी महान् है। महानता पर कुल्हाड़ी मत मारें। धार्मिक मंच के लोभ में नारी को न डुबा डालें। घर की शोभा नारी से होती है। नारी विहीन समाज खोखला है। तो नारी क्यों पुजारिन पद से वंचित है? तमिल, तेलूगु, मराठी, गुजराती आदि महिलाएँ मंच पर आती हैं। यहाँ तक कि मुस्लिम महिलाएँ भी इज्जत के पहनावे में मंच सम्भाल रही है। तब आश्चर्य होता है संसार का गुरु और इस मंच की विदुषी महिलाएँ धार्मिक मंच से खाली क्यों? इस गंभीर केंसर को साधारण ज्वर न समझें। सही उपचार का मार्ग अपनाने से कल्याण निश्चित है। दीपावली के इस महान् अमावस्या पर महर्षि दयानन्द सरस्वती के जलाये दीप को याद करें। स्वयं जलकर चल बसे। संसार को इस अद्भुत-प्रकाश हमारे छोड़ गये। उस प्रकाश में यदि हम भटकते हैं, तो स्वामी जी ज़िम्मेवार नहीं हैं। स्वयं हम ही ज़िम्मेदार है। दीपावली की गहराई को समझें, समझाएँ और रास्ता भी साफ़ करें ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

(चाणक्यनीतिदर्पण १३-११)

डॉ० (श्रीमती) ऋचा शर्मा मोकूनलाल, एम.ए.,पीएच.डी.(संस्कृत), अध्यापिका डी.ए.वी. कॉलेज

असारे खलु अस्मिन् संसार अनेक योनयः सन्ति । तेषु मानवयोनिः एव सर्वोत्तमाः योनिरस्ति। महाभारते सत्यमुक्तं व्यासेन :-

'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं कश्चित्'

मनसा सह श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, नासिका चेति प्राप्तिः तथा बुद्धेः सम्यक् विकासकारणादेव मानव - जीवनस्य श्रेष्ठत्वमस्ति । यद् इन्द्रियं मनसा सह संयुज्यते तदेव इन्द्रियं कर्म करणे समर्थं भवति । विना मनः नैव किंचिदपि कार्यं भवति । अतएव यजुर्वेदे वर्णितमस्ति - **'ज्योतिषां ज्योतिः'** *(यजु ३४-१)* अर्थात् ज्योतिषां शब्दादिविषयप्रकाश कानामिन्द्रियाणां ज्योतिः - प्रकाशकं प्रवर्त्तकं भवति मनः । चाणक्यनीति शास्त्रे सत्यमुक्तम् - **'आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणाम संयमः। तज्जयः सम्पदां मार्गो यनेष्टं तेन गम्यताम्।।'** (७२)

तात्पर्यमेतद् इन्द्रियाणामसंयमः आपदां उ बन्धनकारकं मार्गो भवति । मनसा तेषां संयमनं सम्पदां उ मोक्षस्य मार्गोऽस्ति। अतः मनः एव बन्धस्य - दुःखस्य कारणं तथा च मोक्षस्य - आनन्दस्य कारणमस्ति । मोक्षेऽपि अभौतिक, मनसा संकल्पमात्रेण शरीरेण इच्छानुसारम् आनन्दमनु भवति । सत्यमेवोक्तं यजुर्वेदे **'यज्ज्योतिरन्तरमृतम्'**

यन्मनः अन्तरिस्थित्वा सर्वकार्यं सम्पादयति तेन (मनसा) विना किंचिदपि कार्यं कर्त्तुं समर्थं न भवति । अतः तन्मनः अमृतम - नाशरहितमस्ति । आचार्य प्रवर शंकराचार्येण सम्यगुक्तम् - **'जितं जगत् केन ? मनो हि येन'**

स्वामी दयानन्दः वैदिक मार्गम् अवलम्ब्य वेदमन्त्रानुसारं स्व जीवनं यापयित्वा पूर्ण रूपेण मनः संयम्य मोक्ष मार्गं लब्धवान्। स्व जीवनस्य अन्ते स्वामी दयानन्दः **'हे प्रभो ! तवेच्छा पूर्णा भवतु'** इति कथयित्वा स्व जीवनं समर्पितम्। अन्ते च –

वदनं प्रसाद सदनं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ।।

इति वचनानुसारं तेषां जीवनम् अस्माकं कृते सदैव वन्दनीयः पूजनीयश्च भूयात् ।

English Translation

Mana - the cause of bondage or salvation

Of the many species (forms of life) existing in this universe, the human species is the highest form of life. Maharishi Vyāsa affirms same in the Mahābhārata: *"Na hi mānushāt shresthataram kashchit"*.

Man has matured cognitive sense organs (ear, skin, eyes, tongue & nostrils) through which it has a higher potential to refine his *mana* (mind) by acquiring knowledge as compared to other living beings. Actions take place only when the mind connects to the senses. *"Jyotishām jyoti"* in the YajurVeda (34/1) depicts *jyotishām* as the acquisition of true knowledge through sound, touch, sight, taste and odour through the perceptive senses) and *jyoti* as enlightenment of the mind.

The Chānakya Neeti upholds: *"āpadāma kathitah pantha indriyānāmsanyamah | Tajjasyah sampādam margo yaneshta, tena gamyatām ||"*, i.e. failure to control of the senses leads to bondage; control of the mind and senses leads to *moksha* (salvation or liberation from the cycle of birth and death). Bondage is the cause of suffering and moksha is the state where the soul is gratified with the bliss of the Almighty. *Moksha* is attainable when the soul firmly resolves and controls the mind which in turn controls the senses and our physical actions.

"Yajjyotirantaramritam" in the YajurVeda (34/3) edicts that *mana* is the inner control centre without which no action can be performed. The great philosopher Shankarāchārya underlined: *"Jitam jagat kena? Mano hi yena"*, i.e. he who conquers his mind triumphs over the world.

Maharishi Swami Dayānanda elaborated on the prosperous Vedic way of life sustaining his views from the teachings embedded in the hymns of the Vedas. He lived as per the Vedic commands with total control over his mind and progressed to attain moksha. While breathing his last he thus spoke: *"He Prabhu ! Tveccha purnā bhavatu ||"*, i.e. O Lord! Your will be fulfilled.

Vadanam prasāda sadanam sudhāmucho vāchah |
Karanam paropkāranam yeshām keshām na te vandyāh ||

An accomplished life is admired by all.

THE ESSENCE OF LIGHT IN HUMAN LIFE

Pt. Pradeep Ramdonee

The creation of this universe emanates from **Dissolution, Ahoratrani(total darkness), Creation and dissolution, Darkness** and **Light, Day and Night** and **Righteousness** are interlinked. Sunrise brought immense joy and happiness to mankind as it showed the path to be followed, enlightened the eyes, and the mind, created the ability of furthering into the immense creation to know the reason behind it. The omnipresence of light in acquiring knowledge and happiness in the creative activity of the human race, led to its acceptance as the only factor which can uplift the human soul.

Light is AGNI and AGNI is the generator of force. AGNI according to the Vedas is God and the Veda is the true scripture given at the very creation of this universe. **The Veda is the torch light of mankind, the guiding force capable of upholding the physical, moral, spiritual, material and economic progress of mankind.** It is the path from **darkness** to **light**, from **Asatya** to **Satya** (truth) from the cycle of death to liberation of the soul (Moksha). The human soul and body transits through the **four stages of accomplishment ,** i.e **Dharma, Aartha, Kaam** and **Moksha**.

The Aryan society has been one with theism. The **Vedas** as well as the principles of **Arya Samaj** depict **GOD** as being the cause of all material and spiritual knowledge. Henceforth whatever is derived from him belongs to him and whatever use we make of what we have derived from him, we have to show our gratitude.

Deepavali is the festivity of **happiness**. Happiness is the source of accomplishment of our deeds towards the Supreme Lord and the society at large. **The acquiring of wealth by righteous means and its sharing for the promotion of righteousness bring immense joy, happiness and culminates into a festival of happiness.**

The ancient **Aryan Society's** main activity was that of agriculture. The preparation of the land, the sowing of the seeds,the ripening of the grains, all required the benediction of the Supreme Lord. At all stages of this process, the Aryans used to perform Yaj to keep our ecological balance which is essential to the completion of the planting process. The continued physical and spiritual splendour led to the upliftment of the society at large and to the acceptance, protection and propagation of the three **'Satya ', 'Ishwar', 'Jeeva'** and '**Prakrity**'.

Deepavali is the culmination of the process of integration of mankind to the noble ideas of the **Vedas. Deepavali** throughout history has been marked by many great events, connected to the process of enlightenment. **Maharshi Dayanand Saraswati's Nirwaan Diwas** is remembered throughout the world for his immense contribution to the propagation of truth and the unveiling and denunciation of the **'corrupt intelectuals',** the fight against their 'modus operandi' and the uprooting of the very tree which fructified their criminal activities. Maharshi Dayanand Saraswati is the liberator of India from the yoke of colonialism, **swarajya** whereby he preached **swarajya** instead of **surajya**, the great freedom fighter and the disseminator of eternal truth as contained in the **vedas**.

Deepavali, being the symbol of enlightenment should not be limited to exterior facets of our lives. On the contrary, light must penetrate our mind, our speech and our acts whereby we have to question the truthfulness of our thinking and deeds. Accepting blind faith and acting deliberately on its path is conducive to lead us to **'Asurya nam te loka andhena tamasa vritah……..',** the world of darkness. The **'Satyartha Prakash'** of **Maharshi Dayanand Saraswati**, read, understood, and put into practice by mankind will surely enlighten the souls of billions of people throughout the world.

May **Deepavali** be a source of joy, happiness and progress. May we uphold the great ideas of truth and may the light for which **Maharishi Dayanand Saraswati** sacrificed his life enlighten all the stages of the human life.

एक ज्योतिर्मयी स्मरणीय रात्रि

श्रीमती भगवन्ती घूरा

थी दिवाली की रात, सजी हुई थी दीपों की बारात।
छाया हुआ था प्रकाश चहुँ ओर, मची हुई थी खुशी का जोर।
काल-ज्ञान से अनभिज्ञ, मानव को काल-रात्रि ने दिया तोड़।
आर्य जगत् के शिरोमणि को प्राप्त हुआ निर्वाण, सिधारे परलोक।
वेदोद्धारक समाज, सुधारक महर्षि दयानन्द की बुझी जीवन-ज्योति।
मची हुई थी कहीं लोगों में उमंग, तो कहीं लोग रह गये दंग ।
ज्योतिर्मय वातावरण में हुआ लीन, एक महान् आत्मा विलीन ।
३०.१०.१८८३ साल की रात बन गई निराली एवं स्मरणीय ।

A NEW WITH VEDIC LIGHT IN A WAR-TORN WEARY WORLD

Vinai Ramkissoon, Yoga Instructor

Ignorance = Darkness; Knowledge = Light.

The world is plunged in spiritual darkness, mental agony, blind faith, superstitions, dogmas, terror, etc. Submerged in materialism, rat-race competition for sensual pleasures, corruption, falsehood, greed, poverty and violence, our worries sum up to an endless list.

A handful of the world population has some real awareness of the teachings of the Vedas. The vast majority never had a glimpse of the Vedic culture or way of life. The Vedas, the Vedic rishis (seers / scholars of the Vedic era) and the Arya Samaj have a message relevant to mankind in this war-torn weary world.

The need of the hour is to inspire people to work hand in hand, preaching truth, peace, progress and universal brotherhood in accordance with the Vedas, thus cause the Vedic light, culture, wisdom and knowledge to radiate in all directions. Only then the world would abide by the Almighty's instructions, true spirituality be rekindled and the creation of a society of noble human beings be a reality.

Once in a while someone is born who changes the world to such an extent that things do not remain the same thereafter. Maharishi Dayanand Saraswati was such a gifted person. In his book 'Enriching the Life' Dr Harish Chandra, PhD writes: 'Maharishi Dayanand Saraswati (1824-1883) was the greatest Vedic Scholar India produced after the great etymologist Yaska and after the tradition of rishis that ended with Jaimini, the author of Mimaansa'.

Maharishi Dayanand preached: 'Bow before the ideals, not before the idols!' His clarion call was: 'Back to the Vedas'. The Vedas, the one-and-only knowledge revealed by God at the time of creation declare God as Omnipresent, Omniscient, Omnipotent, all-Just, Unborn, Indivisible, Formless (devoid of a physical body, never incarnate, thus cannot have an image!) Idol worship is anti-Vedic, forbidden in the Vedas and Shāstras. Maharishi Dayanand attributes the causes of the prevailing wide-spread ignorance, fraud and poverty in India to lay, idle, indolent and beggarly priests.

Writing about Sandhyaa, Maharishi states that this is a meditation process/activity to be done at the twilight (sunrise & sunset). It is a moment to experience our personal relationship with God who is the nearest and dearest. He has also given the fine details on the benefit of jaapa (the chanting Gayaatri Mantra & other Vedic verses), Agnihotra and the Yajna. He taught us the techniques to acquire divine knowledge and the proper way to worship the one-and-only God. AUM is the main name, other names define only one characteristic or action or attribute of that Creator and Supreme Being.

Maharishi Dayanand Saraswati transferred the true Vedic knowledge acquired from Dandi Guru Virjaanand to the whole world. He was true to the vows given to the guru. He created the Arya Samaj as a society of persons noble in character, deeds and personality traits, not only for the Hindus nor the Indians but for the uplift of the physical, spiritual and social standards of all in the world. He exemplified the highest values of human life.

The Vedic wisdom was, is and will ever be a beacon of light to mankind. In spite of being the founder of the Arya Samaj (Bombay, India - April 1875), he chose to remain an ordinary member. He vehemently opposed Gurudom - the so-called Supremo or Godhead.

The ten principles of the Arya Samaj serve as a lighthouse guiding mankind to the universal values of life: they relate to God; the Vedas; and the conduct of a moral man.

Maharishi Dayanand's recipes shattered superstitions, blind faith (ghosts, spirits, etc.) dogmas, superstitions, evil practices (child marriage, purdah, etc.). The masses were subdued by cunning people and wicked priests. India, was left bereft of guidance and direction.

Advocating the dissemination of knowledge and dispelling ignorance, caste by worth not birth and the Vedas be accessible to one and all, Maharishi sent devastating tremors which brought an end to many malpractices. His teachings empowered people to accede to the light of knowledge.

On Divaali and Rishi Nirvaana celebrations let us rekindle the revealed knowledge and pass on the Vedic wisdom to all around us.

ARYODAYE

Arya Sabha Mauritius

1,Maharshi Dayanand St., Port Louis,

Tel : 212-2730, 208-7504, Fax : 210-3778,

Email : aryamu@intnet.mu, www.aryasabhamauritius.mu

प्रधान सम्पादक :
डॉ० उदय नारायण गंगू,
पी.एच.डी., ओ.एस.के., आर्य रत्न

सह सम्पादक :
श्री सत्यदेव प्रीतम,
बी.ए.,ओ.एस.के,सी.एस.के.,आर्य रत्न

सम्पादक मण्डल :

(१) डॉ० जयचन्द लालबिहारी, *पी.एच.डी*

(२) श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न*

(३) श्री नरेन्द्र घूरा, *पी.एम.एस.एम*

(४) प्रोफ़ेसर सूदरसन जगेसर, डी.एस.सी, धर्म भूषण, आर्य भूषण

(५) योगी ब्रह्मदेव मुकुन्दलाल, *दर्शनाचार्य*

नोट - *यह आवश्यक नहीं कि इस अंक में संगृहीत लेखों का दायित्व सम्पादक पर हो । लेखक स्वयं उत्तरदायी है*

Printer :

BAHADOOR PRINTING LTD.
Ave. St. Vincent de Paul, Les Pailles,
Tel : 208-1317, Fax : 212-9038

The Science of Government (Raj Dharma) (Part I)

Pahlad Ramsurrun

"People suffering from anarchy, as illustrated by the proverbial tendency of a large fish swallowing a small one, first elected Manu, the Vaivasvata, to be their king, and allotted one sixth of the grains grown and one-tenth of Merchandise as sovereign dues. Fed by this payment, the king looks upon them. He took upon himself the responsibility of maintaining the safety and security of their subjects and of being answerable for the sins of their subjects when the principle of levying just punishments and taxes has been violated. Hence, hermits, too, provide the king, with one-sixth of the gains gleaned by them thinking that it is a tax payable to him who protects us".

Kantalia's Arthsastra

When the "Satyarth Prakash" was written by Swami Dayanand Saraswati in 1870's, the world had not yet witnessed the emergence of the world super powers that were to bring unprecedented changes in World Polity, e.g. the birth of Communism in Russia in 1917 and still later in 1949 in China. Then, half the globe was ruled by Core at Britain and the United States of America had disconnected itself from the Supremacy of U.K. The democratic form of government was not in vogue as nowadays, and most of the countries of the world were ruled by monarchial form of Government, that is, they were governed by a king – a person vested with the supreme power of the nation. According to the feudal usages (system) the king was the souree from whom all command, honour and authority flowed, and he in turn delegated to his followers the power by which they exercised subordinate rule or authority.

The theory of Divine Origin of the State

The Origin of the State is largely veiled in the mist of time. It is difficult to point out any exact period of history when the state might be said to have come into existence. The modern Ethnology and Anthropology have undoubtedly thrown much light upon the dim past of Human history, still the emergence of the state cannot be historically determined. Of the circumstances surrounding the dawn of political consciousness, we know little or nothing according to Gilchrist. In the absence of adequate historical data, it was perhaps inevitable that thinkers (Philosophers) should resort to speculation regarding the origin of the State.

The divine origin theory of the State as old as Political Authority was supposed to be linked with unseen powers. In the Mahabharata the idea of the divine origin of the State is mentioned. In the 'Shanti Parva' there is a reference that when people found anarchy intolerable, they approached God and requested them to give them a Chief who would protect them. Pleased with their prayer, God appointed Manu as their ruler. There are several other passages in the epic to show that the king has the essence of divinity in him. It may, however, be noted that though the Mahabharata attributed the origin of the State to the divine will, it did not accept the theory of divine rights of the kings which is altogether a different doctrine. In fact, it enjoins the people to kill a tyrant who transgresses the "Dharma" or rules of morality.

The Science of Government

According to Maharishi Dayanand Saraswati in Chapter six of the Satyarth Prakash, the Magnum Opus, there are several sub-heads under which, the Swamiji Philosophy of governance is promagated. While writing on the subject, Swami Dayanand has time and again referred to the mythical law giver, Manu, and few relevant texts has been culled from the Rigveda, Yajurveda, Atharveda and Satpath Brahman. The first sub-heading is entitled – " The qualifications of the Head of State" and the second is- "The True King". Let us see what contain both.

The Qualifications of the Head of the State

"He (the head of the State) should be as powerful as electricity : as dear to his people's hearts as their very breath, able to read the inmost thoughts of others, and just in his dealings as a Judge. He should enlightened people's mind by the spread of knowledge, justice and righteousness and dispel ignorance and injustice as the sun illuminates the world. He should be like one who consumes wickedness like fire, keeps the wicked and the criminal under control like a jailer, gladness the hearts of the good like the moon makes the country rich and prosperous as a treasurer keeps his treasury full; is powerful and majestic like the sun, keeps the people in fear and awe; and on whom no one in the whole world dares to look with a stern eye. He alone is then fit to be the Head of State who is like fire, *air*, the *sun*, the *moon*, a *judge*, a *treasurer*, a gaoler in keeping the wicked under control, and like the *electricity* in power."

The True King

"The law alone is the real king, the dispenser of justice, the disciplinarian. The law is considered as the surety of the four classes (Brahman, Kshatriya, Vaishya, Shruddra) and orders (Brahmacharya, Grishta, Vanprasta, Sanyas) to discharge properly their respective duties. The law alone is the true Governor that maintains order among the people. The law alone is their Protector. The law keeps awake while all the people are fast asleep. The wise therefore, look upon the law alone as Dharma or Right. When rightly administered the makes all men happy but when administered wrongly, i.e. without due regard to the requirement of justice it ruins the king. All the four classes would become corrupt, order would come to an end, there would be nothing but chaos and corruption if the law were not properly enforced…He is alone considered a fit person to administer the law by the wise, who invariably speaks the truth, is thoughtful highly intellectual and very clever in the attainment of virtue, wealth and righteous desires. The laws rightly administered by the

king greatly promote the practice of virtue, acquisition of wealth and secure the attainment of the heart-felt desires of his people. But the same law destroys the king who is sensual, indolent, crafty, malevolent, mean and lowminded.

Great is the power and majesty of the law. It cannot be administer by a man who is ignorant and unjust. It surely brings the downfall to the king who deviates the path of rectitude. The Law can never be justly administered by a man who is destitute of learning and culture, has no wise and good men to assist him, and is sunk in sensualism. He alone is fit to administer the law – which is another name of justice who is wise, pure in heart of truthful character, associate with the good, conducts himself according to the law and is assisted by the truly good and great men in discharge of his duties".

Deepāvali : Time to answer to the call of the inner light

Deepāvali encompasses various aspects of our life, amongst others: (i) *Worldly* [outer clean-up: houses, new clothes, sharing sweets & gifts]; (ii) *Legendary* [the return of Rama to Ayodhyā]; (iii) *Scientific* [use of medicinal, odoriferous & other herbs during *Yajña* or *havan* to sanitise the environment]; (iv) *Religious* [prayers, respect to inspiring religious dignitaries]; (v) *Spiritual* [internal clean-up – purification of thoughts, speech & actions and onwards progress towards Self & God realisation].

This festival is essentially a spiritual one where focus is 'to light up the human aspect of mankind'. A soul-searching exercise shockingly reveals today's equation: Deepāvali = lighting of lamps, sharing gifts/sweets, lip-service wishes & prayers ...full stop.

Born as a boy or girl we already belong to the human species (forms of life). Why *manurbhava*? **One who does not respond to the call 'to be human' is reduced to 'a social animal'** who focuses only on eating, merry-making, relaxing and sleeping and is devoid of the characteristics / values that differentiate us from animals.

Deepāvali is time to (1) answer to the call of the inner light; (2) eradicate the negative energies (thoughts, speech and actions); (3) put a brake to confusion, uncertainty, worries, fear, etc. which rule our day-to-day life; (5) put up our utmost mental and physical efforts before, during and after prayers; (4) recall the wonderful purpose of human life; (5) light up our life, move out of the darkness of ignorance; (6) be a guiding light to others.

Distraction curve balls hit us one-after-the-other, leaving us to realise the void at the end of our lifetime. The Vedas, known as Scriptures constitute the one-and-only revelation and the word *Jyoti* is found in several hymns. It refers more-than-often to enlightenment through the acquisition of true knowledge. Below are some extracts which serve as the guiding light to attain the aforementioned objectives of Deepāvali :

…jyotisham bādhate tamah (RV 10.127.3): The light of knowledge dispels the darkness of ignorance and illumines our path for physical, spiritual and social progress. The universe teaches us that the darkest cloud in the sky has a silver lining …light can be eclipsed for some time… not forever. Even the darkest night gives way to the light at sunrise. Light brings progress.

…urujyotirjanayannāryāya (RV 7.5.6): He who follows the teachings of the Vedas, the laws of nature and the divine guidance (inner voice or antahkarana) moves out of sin and become an Arya (a noble person with perfect harmony between his thoughts, speech and actions.)

…jyote…mahi vishruti (YV 8.43): He who is enlightened in all spheres of life (material & spiritual) is unaffected by time (kāla) and period (yuga). Nobody can taint the brilliance attained at Self-realisation and God-realisation (ātmajyoti & brahmajyoti). Yog Darshan calls such a person as 'kushal', i.e he has realised the ultimate goal of human life …moksha, liberation from the cycle of birth and death …mrityurmāmritam gamaya.

…ā roha tamaso jyoti (AV 8.1.8): Man becomes human being only when he leads a life within the framework of yama and niyama (social & personal discipline) or the 10 tenets of Dharma (ethical behaviour). He then learns from the past …but does not dwell / hang on to that past. Past experiences empowers him to be more efficient and effective as well as avoid previous mistakes. He applies the discriminating intellect (medhā buddhi) to dissipate ignorance, blind faith, etc. and be enlightened.

As sentient / conscious beings we should rise above consumerism (*parigraha*) and adopt the values of life …non-violence; truth; non-stealing; control of senses & acquire righteous knowledge; non-accumulation of superfluous things; outer and inner purity; be content with the fruits of our actions; be disciplined and resilient in adverse conditions; study the Scriptures and ancillary literature; and totally surrender to the Almighty who is observing all our actions *(manasā, vāchā & karmanā.)*

Beating the drums that we are descendants of seers / sages *(rishi santān)* serves no purpose when day-to-day life are poles apart from the Vedic way of life. Charity begins at home …the best method of disseminating the Vedic teachings is to personally live up to the ideals a 24x7 basis, i.e. 24 hours a day and 7 days a week *...devā bhāgam yathā purve sanjānānā upāsate* (RV 10.192.3) …only then we shall succeed in making

the world noble *(krinvanto vishvamāryam)*.
…jeeva jyotirasheemahi (RV 7.32.26, SV 259 & 1453, AV 18.3.67 & 20.79.1): Man needs to tread on the path of light and move away from ignorance. True knowledge (*shuddha jñāna*) and discriminating intellect (*viveka*) constitute the spiritual nourishment. Thereafter proper conduct and actions (*shuddha karma*) and correct meditation (*shuddha upāsnā*) will become part and parcel of our daily life. Then and there we shall succeed in all the tests in life.

…tamasaspāramasya…jyotirāpāma (YV 12.73): The minimum effort required from everyone is to pull out the curtains of ignorance, blind faith and superstitions and allow the light of knowledge to flood life.

…swarjyotiragāmaham (YV 17.67, AV 4.14.3): Lasting happiness result from divine qualities. These also confer a brilliant aura, like the moon which outshines the stars. We need not rely on any flattery and / or sweet talks to be happy.

…abhumāganma jyotiravidām devān (RV 8.18.3): The splendour of Self-realisation (*ātma ābhā*) and God-realisation (*Brahma prakāsh*) empowers us to respond in a compassionate and exemplary manner vis-à-vis unfriendly and improper conducts *…apne ātma ābha aur divyatāyein se kabhi alag nahin honge.*

…jyotishca me swashca me yajnena kalpantām (YV 18.1): Like the radiating sunlight, true knowledge enables us to have a clear understanding (*tatvajñāna*) of God (*Brahma*); soul (*ātmā*); truth (*satya*); virtue (*dharma*); duties & responsibilities (*kartavya*); and primary matter (*prakriti*).

Blessed with such enlightenment one is duty-bound to share the knowledge and lead others out of darkness, ignorance, blind faith, etc.

The Yog Darshan upholds the same view: an enlightened person is duty-bound to selflessly impart the knowledge and lead others to the path of salvation *…dharma, ārtha, kāma & moksha,* failing which he cannot secure deliverance from the cycle of birth and death for himself.

Vishokā vā jyotishmatee (YD 1.36) states that one who cultivates the inner light always remain lucid and knows no sorrow. A lucid mind empowers person to be unmoved by difficulties and suffering, increases clarity of thoughts, boosts self-confidence, removes mental confusion and garbage and improves focus, meditation …clears the path to *Samādhi* or *ātmasākshātkāra* & *Brahmasākshātkāra* (Self & God-realisation). It ignites the innate, eternal, unconditional and supreme happiness that is not dependent on events and our reaction to these events.

At this stage, the mind is primarily sātvik, i.e. deep-rooted in the following qualities: balance, harmony, goodness, purity, universalizing, holistic, constructive, creative, building, positive attitude, luminous, serene, being-ness, peaceful, virtuous.

Such a person always works to uplift the physical, spiritual and social welfare of all; thinks about the consequences of his actions; is disciplined through logic; effortlessly increases his intelligence by being more in tune with nature and the universal Vedic values; lives life enlightened by the fact that death can be vanquished through *moksha* where after the cycle of birth and death is put to halt.

The *sātvik* person is recognised though his ever-synchronised mind, speech and actions, described in the Sanskrit shloka: *manasyekam, vachasyekam, karmanyekam mahātmanām.*

Maharishi Dayānanda Saraswati epitomised such a role model:

Jyoyishmāna aur jyotirmaya bankar aisi jyoti jagāyi
Andhakār, ajnānatimir ka jag se bilkul nām mitāane ka kāma kiyā
Sacche yogi banke anya ātmāwon ko apne ānand ka prasād bantatā gayā
Paropkār se anyon ko ānand ki prāpti mein lagtā rahā.

On the occasion of Deepāvali may we pledge to kindle the universal Vedic values in our hearts and value all those around us as human beings.

Dharma hi mānavjeevan ka moola hai
Vande mānavam. Vande mānavadharmam

Yogi Bramdeo Mokoonlall, Darshanāchārya
(Snātak - Darshan Yog Mahavidyālaya)
Arya Sabha Mauritius

Abbreviations
RV: RigVeda; YV: YajurVeda, SV: SāmaVeda; AV: AtharvaVeda; YD: YogDarshan

Bibliography:
Satyārtha Prakāsh, RigVedādi Bhāshya Bhumikā & YajurVeda Bhāshya by Maharishi Dayānanda Saraswati
Yoga Darshanam *(Maharishi Patanjali, Vyāsa Bhāshya & Yogārtha Prakāsh)* by Swāmi Satyapati Ji Parivrājaka
Vedāloka by Swāmi Vidyānand Videha

आर्य समाज के दस नियम

TEN PRINCIPLES OF ARYA SAMAJ

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
The first efficient cause of all true knowledge and all that is known through knowledge is Parameshwara – The Highest Lord, i.e. God.

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
Ishvara (God) is Existent, Intelligent and Blissful. He is Formless, Omniscient, Omnipotent, Just, Merciful, Unborn, Endless, Unchangeable, Beginningless, the Support of all, the Master of all, Omnipresent, Immanent, Unaging, Immortal, Fearless, Eternal, Holy and the Maker of all. He alone is worthy of being worshipped.

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
Vedas are scriptures of true knowledge. It is the first duty of the Aryas to read them, teach them, recite them and hear them being read.

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।
One should always be ready to accept truth and give up untruth.

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।
One should always do everything according to the dictates of dharma, i.e. after due reflection over right and wrong.

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
The prime object of this society is to do good to the whole world, i.e. to uplift the physical, spiritual and social welfare of all.

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।
Let thy dealing with all be regulated by love and justice, in accordance with the dictates of dharma.

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।
One should promote vidya (realisation of subject and object) and dispel avidya (illusion).

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।
One should not be content with one's own welfare alone, but should look for one's own welfare in the welfare of all.

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।
One should regard one's self under restriction to follow altruistic ruling of society, while in following rules of individual welfare all should be free.